ओडिशा के कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं लोक साहित्य

(Odisha ke Kondh Aadivasiyon kee Sanskriti Evam Lok Sahitya)

पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

Thesis submitted to Pondicherry University in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

शोधार्थी / Research Scholar

भूषण पुआला
Bhusana Puala

शोध निर्देशक / Research Supervisor

डॉ. सी. जय शंकर बाबु
Dr. C. Jaya Sankar Babu
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (प्र.)
Asst. Professor & Head (i/c)

हिंदी विभाग **Department of Hindi**
पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय **Pondicherry University**
पुदुच्चेरी **Puducherry – 605 014**

जुलाई / July, 2019

BHUSANA PUALA
Ph.D. [HINDI] FULL-TIME RESEARCH SCHOLAR
DEPARTMENT OF HINDI
PONDICHERRY UNIVERSITY
PUDUCHERRY - 605 014.

==========

Date: 09 / 07 / 2019

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **'Odisha ke Kondh Aadivasiyon Kee Sanskriti Evam Lok Sahitya' (ओडिशा के कोंध आदिवासी की संस्कृति एवं लोक साहित्य)** submitted to Pondicherry University in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a record of original research work done by me, under the supervision and guidance of **Dr. C. JAYA SANKAR BABU**, during the period of my study 2014-2019 in the Department of Hindi, Pondicherry University and the thesis has not formed the basis for the award of any Degree/ Diploma/ Associateship/ Fellowship or any other similar titles before.

Signature

Place: Puducherry
Date: 09 / 07 / 2019 (BHUSANA PUALA)

पांडिच्चेरीविश्वविद्यालय
PONDICHERRY UNIVERSITY
हिंदीविभाग/ DEPARTMENT OF HINDI

डॉ. सी. जय शंकर बाबु
Dr. C. JAYA SANKAR BABU
सहायक प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष (प्र.)
Asst. Professor& Head i/c.,

कालापेट / KALAPET,
पुदुच्चेरी / PUDUCHERRY – 605 014
दूरभाष/Phone:0413-2654826, 2654776
E-mail:professorbabuji2@gmail.com

Date: 09/07/2019

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled, **'Odisha ke Kondh Aadivasiyon Kee Sanskriti Evam Lok Sahitya' (ओडिशा के कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं लोक साहित्य)** submitted to Pondicherry University in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of **DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI** is a record of the original work done by **Mr. BHUSANA PUALA** during the period of his study 2014 - 2019 in the Department of Hindi, Pondicherry University, under my supervision and guidance and that the thesis has not formed before the basis for the award of any Degree/ Diploma/ Associateship/ Fellowship or any other similar titles before.

Place: Puducherry

Date: 09 /07 /2019

(सी. जय शंकर बाबु / C. Jaya Sankar Babu)
RESEARCH SUPERVISOR & HEAD i/c

अनुक्रमणिका

भूमिका i - x

आभार xi - xii

1. आदिवासियों का परिचय 01 – 35

1.1. 'आदिवासी' की अवधारणा

1.1.1. अनुसूचित जनजाति

1.1.2. वनवासी (जंगली)

1.1.3. गिरिजन

1.1.4. देशज (इंडिजेनस)

1.1.5. राक्षस (असुर)

1.1.6. असभ्य

1.1.7. एबोरिजिनल

1.1.8. ट्राइब्स

1.2. आदिवासियों का सामान्य परिचय

1.2.1. आदिवासियों की जीवन शैली

1.2.2. आदिवासियों की संस्कृति

1.3. भारत के आदिवासियों का वर्गीकरण

1.3.1. भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकरण

1.3.2. भाषा के आधार पर आदिवासियों का वर्गीकरण

1.3.2.1. द्रविड़ परिवार की भाषा

1.3.2.2. अस्ट्रो एशियाटिक समूह की भाषा

1.3.2.3. चीनी तिब्बती भाषा परिवार

1.3.2.4. भारोपीय आर्य भाषा परिवार

1.4. भारत के आदिवासियों के विविध नृत्य

1.4.1. दांगिड़ी नृत्य (कुटिया कोंध, ओड़िशा)

1.4.2. होरी नृत्य (राथोवा आदिवासी, गुजरात)

1.4.3. बागद्ववाल नृत्य (भूटिया आदिवासी, उत्तराखंड)

1.4.4. ब्रिली नृत्य (धारूवा आदिवासी, ओड़िशा)
1.4.5. कुइनरी लोस्व नृत्य (खरिया आदिवासी, झारखंड)
1.4.6. पाग नृत्य (बाइग जनजाति, मध्यप्रदेश)
1.5. आदिवासी विमर्श की अवधारणा
1.6. निष्कर्ष

2. कोंध आदिवासियों का सामान्य परिचय 36 - 66

2.1. ओडिशा के आदिवासियों का सामान्य परिचय
2.2 . कोंध आदिवासियों का परिचय
2.2.1. 'कोंध' शब्द की व्युत्पत्ति
2.2.2. कोंध आदिवासियों का वर्गीकरण
2.2.2.1. कुटिया कोंध
2.2.2.2. डंगरिया कोंध
2.3. कोंध आदिवासियों का रहन-सहन
2.3.1. गृह का निर्माण
2.3.2. जीविकोपार्जन
2.3.2.1. शिकार
2.3.2.2. कृषि
2.3.2.3. आर्थिक स्थिति
2.4. कोंध आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था
2.4.1. पारिवारिक व्यवस्था
2.4.1.1. पितृसत्तात्मक परिवार
2.4.1.2. संयुक्त परिवार

2.4.1.3. पँचायत व्यवस्था

2.4.1.4. गोत्र व्यवस्था

2.5. कोंध आदिवासी समुदाय की कलाएँ

2.5.1. मूर्ति कला एवं चित्र कला

2.5.2. संगीत एवं नृत्य कला

2.6. कोंध आदिवासियों की भाषा

2.6.1. 'कुई' भाषा का व्याकरणिक प्रयोग

2.6.2. कुई' एवं 'कुवी' भाषा का अंतर्संबंध

2.6.3. द्रविड़ भाषा का प्रभाव

2.7. निष्कर्ष

3. कोंध आदिवासियों की संस्कृति 67 - 97

3.1. कोंध आदिवासियों की लोक संस्कृति

3.2. कोंध समुदाय में विभिन्न संस्कार

3.2.1 जन्म संस्कार(जर्मा)

3.2.2. नामकरण (दरू इटिनो)

3.2.3. विवाह संस्कार (पेल्ली/बिहां)

3.2.3.1. अपहरण विवाह (डेक बिहां)

3.2.3.2. प्रेम विवाह (नेही बिहां)

3.2.3.3. परिवार द्वारा तय किया गया विवाह

3.2.3.4. विवाह विधि

3.2.3.5. बहु विवाह

3.2.4. मरण संस्कार (गर्की)

3.3. कोंध समुदाय के विभिन्न पर्व-त्योहार

3.3.1. टाकु परबु (धार्ती पेन्नु)

3.3.2. नुवाखाई (कुली मर्का)

3.3.3. कांदुल पर्व (हर्चा परबु ,कांगा परबु)

3.3.4. बिचा होपा परबु (बीज बोने का पर्व)

3.3.5. घंट पर्व

3.3.6. कडरू पर्व

3.4. अलौकिक शक्ति

3.5. निष्कर्ष

4. कोंध आदिवासी समुदाय का लोक साहित्य 98 - 163

4.1. लोक साहित्य का परिचय

4.2. कोंध आदिवासी समाज में प्रचलित लोकगीत

4.2.1. विवाह गीत

4.2.2. प्रेम गीत

4.2.3. महिलाओं के गीत

4.2.4. शिकार गीत

4.2.5. बच्चों के गीत

4.2.6. पति-पत्नी के गीत

4.2.7. भाई-बहन के गीत

4.2.8. देवी-देवताओं के गीत

4.2.9. राजनीतिक गीत

4.3. कोंध आदिवासियों के लोक गीतों का विश्लेषण

4.3.1. लोक गीतों में सामाजिकता

4.3.2. लोक गीत में स्त्री का चित्रण

4.3.3. लोक गीतों में भूमंडलीकरण की छाया

4.3.4. प्रकृति का चित्रण

4.3.5. जीविकोपार्जन की समस्याओं का चित्रण

4.4. लोक कथाओं में कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं जीवन मूल्य

4.4.1. वेरियर एलविन द्वारा संकलित कोंध आदिवासियों की लोक-कथाएँ

4.5. निष्कर्ष

5. कोंध आदिवासी समुदाय के साहित्य संरक्षण की चुनौतियाँ

5.1. कोंध आदिवासियों की समस्याएँ 164 -173

5.1.1. शिक्षा की समस्याएँ

5.1.2. विस्थापन की समस्याएँ

5.1.3. भाषा की समस्याएँ

5.2. निष्कर्ष

6. उपसंहार 174 -182

संदर्भ सूची 183 - 187

परिशिष्ट – 1	लोक-कहानियाँ	188 - 202
परिशिष्ट – 2	छायाचित्र	204 - 208
परिशिष्ट – 3	ओडिशा के रायगड़ा जिले के लोक-गीतकार	209 – 210

लोक गीतों की सूची

➢ विवाह गीत पृ.सं.

1. इल्लु सिंब्रा माली आयीने 105
2. टाऊन तुगापाड़ी पुटींदी लांजा कुणुकु 107
3. इची कोयू आऐ डोला कुली माँजिया प्रेजाले 108
4. वेला कारू लागटी टाइलु ताले रेजिसे। 109
5. नायुती माँगा आएते लेके 110
6. माँ माली माग्यशोले कारामा गाटेई 112
7. बेनुती टोरू माँजी माँबुआ वाजाली पुनामे 113
8. जेमुलो आदे बाडारे ए 114
9. बोरी ब्रम्हाली संदेणी आदेणी 116

➢ प्रेम गीत

10. सारूली हाजी मानेमी 117
11. ओटा माडी सोका बाडिरे दादा 119
12. पाका प्राडति गोगा ड्रई 120
13. क्रोडा हाटा आंधारा टोरू 121
14. वेला वेला रोंग काटाती फुंगा लेची ही माँजासी हा 122
15. नानु ओयेनी इंजाली नाना 122
16. ऐमीनी राजा गाढ़ता 123
17. वाही वाही मिला नाना वाहीं मइनी 124
18. मुतेली टोंडा लिणी-लिणी या 125
19. कप्णी ताडी पुयु पुते 126

➢ महिलाओं के गीत

20. गूडुमु गाडामा गूक्री मानी 127
21. निली उली की वेला उली चाल जीबो 128
22. आकिली पतर एडे रंग माचे 128
23. काडा वारी पुयु तीनी दामिणी पुयु 129

24. मुस्कु मुंडा मुस्कु रेवुड़े *131*
25. ऐरा बाटी ऐ पालसी फूलो *132*
26. जोड़ु जोड़ु नारेशु तीन कोडी राशा *133*
27. रेकाया बाटता माचेमे ए *133*
28. हाथी तीर- तीर प्राडेणे *134*
29. कातीनी लो कातीनी ताडिया बाडती डाआनी *135*
30. डिपा माडी डाकितो सांपु डुका त्राजा माने *137*
31. टिकी टाका भूमिता *138*
32. पाई की डोला सेड नाहीं *139*
33. जा लेकाना जा लेकाना मुयेली बोंडा जा लेकाना *139*
➢ ***शिकार गीत***
34. पाजि वाती जिआ तुनेमी *140*
35. जा हाना हा ...जा हान हा *142*
36. बिलेणे बिलेणी डोला *142*
➢ ***बच्चों के गीत***
37. छको छको माटी गाड़ी *143*
38. बंधुके बणुलकु लामा *144*
39. ऊटू ऊटू गुणका ताबला *145*
➢ ***पति-पत्नी के गीत***
40. निमाती कुली जेकाहा *146*
41. मिलिती मिला माँजी ओंडा काड़िने *147*
42. प्रथम थोर मोते देखिलु *147*
➢ ***भाई -बहन के गीत***
43. होरू रेचिनी वातेमि ओ मिला नाना ओ *148*
44. नाना देतामु नाना देतामु दारा पादड़ी देता मो ओ *149*
➢ ***देवी-देवताओं के गीत***
45. जिऊ ढांजाबो हाजामु ऐ पालु ढांजाबो हाजामु ऐ *150*
46. सोरली सापुरी साणा *151*
➢ ***राजनीतिक गीत***
47. जाज आसि करी देश बुलिला रे नविन *153*

भूमिका

विषय चयन का आधार

बात प्रारंभ करने से पहले मैं अपनी जिंदगी के इतिहास के पन्नों को उलट कर देखना चाहता हूँ। मुझे हिंदी के प्रति लगाव हाई स्कूल से ही होने लगा। जैसे-जैसे उच्च शिक्षा की ओर कदम बढ़ाता गया, वैसे-वैसे मेरी रुचि हिंदी साहित्य की ओर बढ़ती गयी। जिससे हिंदी के प्रति मेरी गहरी रुचि तथा उसके प्रति लगाव एवं मेरे भाई के हौसला अफजाई ने मुझे पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय तक पहुँचाया, जहाँ मुझे एम.ए. के पश्चात पीएच.डी. में दाखिला लेने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं एम.ए के दौरान ही सोचता था कि यदि मुझे शोध करने को मौका मिले तो अपने कोंध समाज पर ही कार्य करूँगा। इस विषय पर मैंने, अपने शोध निर्देशक डॉ. जय शंकर बाबु सर से बात की एवं शोध की प्रस्तावना प्रस्तुत की। सर के सुझाव के अनुसार शोध का शीर्षक **'कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं लोक साहित्य'** तय हुआ।

कोई भी विषय, चयन या अध्ययन का केंद्र बिंदु तब बनता है, जब उस विषय के प्रति हमारा विशेष लगाव होता है। कोंध आदिवासी परिवार में जन्म होने के नाते मैंने अपने समाज के परंपरागत रीति-रिवाज, लोक संस्कृति और भाषा एवं जीवन पद्धति को बहुत करीब से देखा है। इस समाज के लोक साहित्य में विलक्षण प्रतिभा कूट-कूट भरी हुई है, जो आज मौखिक रूप में विद्यमान है, जिसे लिखित रूप से संकलित करने की आवश्यकता है। मेरा शोध विषय महज एक छोटा-सा प्रयास कहा जा सकता है।

ओडिशा में लगभग 62 आदिवासी समुदाय निवास करते हैं । उनकी संख्या 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जन संख्या का 22.85 प्रतिशत है । उनमें से कोंध आदिवासियों की संख्या सबसे ज्यादा है । इनकी संख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 16,27,486 है । कोंध आदिवासी ओडिशा के विभिन्न जिलों में निवास करते हैं। दक्षिण ओडिशा के कंधमाल, रायगडा, कोरापुट, गजपति, मालाकानगिरि एवं नबरंगपुर तथा आंध्र प्रदेश के विजयनगरम् जिले में भी कोंध आदिवासी निवास करते हैं ।

कोंध आदिवासियों की भाषा '**कुई**' है, जिसका संबंध द्रविड़ भाषा परिवार से है । लेकिन आज यह भाषा आधुनिकता और भूमंडलीकरण के दौर में धीरे-धीरे विलुप्त होने के कगार पर है । इसके साथ ही साथ औद्योगीकरण, नक्सलवाद, हिंदुत्ववाद एवं मिशनरियों के दुष्प्रभाव से उनकी संस्कृति और लोकाचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा है । लिहाजा कोंध आदिवासी संकट की स्थिति में हैं । उनके समाज में औद्योगीकरण एवं नक्सलवाद का प्रभाव के कारण ये भोले-भाले लोग देश के नगरों-महानगरों में जा कर मजदूरी करने के लिए मजबूर हो रहे हैं । एक बार जो शहर या दूसरी जगह रोजी-रोटी के लिए निकल जाता है, वह फिर वापस आना नहीं चाहता है । इस तरह कोंध आदिवासी समुदाय की समस्याएँ दिन ब दिन जटिल होती जा रही हैं । इन सारी समस्याओं के पीछे एक बहुत बड़ा कारण है, शिक्षा । उन दुर्गम इलाकों में आज भी शिक्षा व्यवस्था कोसों दूर नज़र आती है । उनके बाल-बच्चे आज भी प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए जूझ रहे हैं । ऐसे समाज पर केंद्रित अनुसंधान की कई दृष्टियों से प्रासंगिकता है ।

शोध की प्रासंगिकता

कोंध आदिवासी समुदाय ओडिशा का सबसे बड़ा समुदाय है। कोंध आदिवासियों के समक्ष कई चुनौतियाँ उपस्थित हैं। उनमें आदिवासी अस्मिता संबंधी चुनौती सबसे बड़ी है। आदिवासी लोक संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त होने के कगार पर है। इसके कई कारण हैं। इन चुनौतियों का सामना करने और उनकी अस्मिता संबंधी मुद्दों के लिए समाधान खोजे जा सकते हैं। आदिवासी समुदाय में जाकर ऐसे प्रयास किए जा सकते हैं, जिससे वर्तमान पीढ़ियों में प्रचलित लोक संस्कृति को आगे की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। तमाम लोक संस्कृतियाँ भारत की मिली-जुली संस्कृति के अभिन्न अंग है। अतः उनके संरक्षण की बड़ी प्रासंगिकता है। इस प्रासंगिकता के आलोक में आदिवासी समुदायों से संबंधित अनुसंधान कार्यों की प्रासंगिकता स्पष्ट है। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, इस अनुसंधान कार्य की परिकल्पना की गई थी। अनुसंधान की समय-सीमा, साधनों की सीमाओं के आलोक में यह एक लघु प्रयास है, आज भी कोंध आदिवासी समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी दिखाई पड़ती है, और उनका लोक साहित्य और उनकी भाषा इत्यादि आज के इस आधुनिक नव साम्राज्यवादी युग में विलुप्त होते जा रहे हैं। इस दृष्टि से शोध कार्य की स्वतः ही प्रासंगिकता हो सकता है।

संबद्ध साहित्य की समीक्षा

अपने इस शोध विषय क्षेत्र में कई अनुसंधान कार्य पूर्व ससंपन्न हुए हैं। कुछ महत्वपूर्ण कार्यों का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ। इनके अलावा भी कई शोध कार्य सुसंपन्न

हुए होंगे जो मेरे ध्यान में नहीं आए। शोध प्रबंध प्रस्तुत तक दिशा में प्रयास करके मैं इस अद्यतन बनाऊँगा।

मिहिर रंजन पट्नायक (1992) की कृति **'History and Culture of Khond Tribes'**: इस पुस्तक में कोंध आदिवासियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा उनकी संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं राजनीतिक स्थिति सामाजिक संरचनाओं के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला गया है। कोंध आदिवासी समुदाय सामान्यतः जंगलों, पहाड़ों में निवास करने से उनकी जीवन शैली अन्य मानव समुदाय से कुछ हद तक भिन्न है। इस पुस्तक में उनके जीवन के विविध आयामों को उजागर किया गया। यथा उनकी रहन-सहन, वेशभूषा, आभूषण तथा उनके रीति-रिवाज, खान-पान, सोच-विचार एवं विभिन्न संस्कार इत्यादि। इस पुस्तक में कोंध आदिवासियों के प्रत्येक पहलुओं पर समाजशास्त्रीय एवं मानव शास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है। इस पुस्तक की गहराई से अध्ययन करने के पश्चात मुझे उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं संस्कृति पर बुनियादी जानकारी प्राप्त हुई। जिसके तहत मुझे शोध अध्ययन करने में आसानी हुई।

J.E. Friend Pereira (1909) के द्वारा रचित पुस्तक 'A Grammar of the Kui Language': इस पुस्तक में उन्होंने **कुई** भाषा की व्याकरणिक प्रयोग एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया है। कोंध आदिवासी ओडिशा एवं आंध्र प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में निवास करने हेतु लिहाजा उनकी भाषा शैली एवं शब्दों में अंतर प्रतीत होना लाजिमी है। शोध के अंतर्गत उनकी भाषा एवं द्रविड़ भाषा के अंतर्संबंधों के विश्लेषण करने के साथ-साथ विस्तृत व्याकरणिक विश्लेषण प्रस्तुत है।

वेरियर एलविन (2008) द्वारा रचित पुस्तक '**जनजातीय मिथक**' (उडिया आदिवासियों की कहानियाँ) में ओडिशा की जनजातियों की कहानियाँ लगभग एक हजार से ज्यादा लोक कथाएँ उल्लेख किया गया है । इसमें भतरा, विंझवारा, गोदबा, गोंड, मुरिया, झरिया, पेंगु, जुआंग, कमार, कोंड या कोंध, परेंग, सांवरा आदि। जनजातियों की लोक कथाओं का संग्रहीत किया गया है । किंतु इसमें कोंड एवं सांवरा लोक कथाएँ आदि अधिक उल्लेख मिलता है । मुझे इस पुस्तक के अध्ययन के दौरान यह प्राप्त हुआ है कि उनकी पुस्तक में केवल कोरापुट, गजपति एवं कलाहांडी जिले की लोक कथाएँ संग्रहीत हैं । मैंने अपने शोध के तहत रायगड़ा जिले के कोंध आदिवासियों की कुछ लोक कथाओं का संकलन किया है, और इस क्षेत्र में भविष्य में अधिक से अधिक अनुसंधान करने की संभावना है ।

आदिवासी भाषा एवं संस्कृति अकादेमी अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग में ओडिशा के प्रत्येक आदिवासियों के विकास के साथ-साथ उनकी संस्कृति, लोक साहित्य और भाषा को सरंक्षित रखने का प्रयास हो रहा है । उस विभाग द्वारा कोंध आदिवासियों की कुई भाषा के कई शब्दकोशों एवं कई पुस्तकों लिखी गयी हैं, परंतु वे केवल कुई या पुलवाण प्रदेश की कुई भाषा पर केंद्रित हैं । मैंने उस विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का गहन अध्ययन किया है ।

अनुसंधान प्रविधि

अनुपलब्ध तत्वों का अन्वेषण - कोंध आदिवासियों के लोक गीत अनुपलब्ध सामग्री हैं, जो मौखिक रूप से विद्यमान हैं । उनका संग्रह इस शोध कार्य के दौरान अनुसंधान द्वारा किया गया है, जिसका शोध अध्ययन के अंतर्गत प्राथमिक स्रोतों के रूप में उपयोग किया गया है ।

उपलब्ध तत्वों या सिद्धांतों का नवीन आख्यान - कोंध आदिवासियों के संबंधित उपलब्ध सामग्री का गहराई से अध्ययन करके नया आख्यान देने का प्रयास किया गया है।

विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि - शोध के प्राथमिक स्रोत संग्रहीत करके लोक गीतों का सैद्धांतिक विश्लेषण किया गया है।

वर्णनात्मक शोध प्रविधि - कोंध आदिवासियों के गीतों का विश्लेषण करते वक्त अर्थ या भाव को समझाने में वर्णनात्मक प्रविधि अपनायी गयी है।

अनुसंधान की सीमायें

किसी भी शोध अध्ययन की एक सीमा होती है। अपने अनुसंधान कार्य के लिए चयनित विषय **'कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं लोक साहित्य'** काफी व्यापक है। इसलिए शोध की अवधि को ध्यान में रखते हुए शोध विषय का अध्ययन की एक सीमा निश्चित की गयी है। मैंने शोध का क्षेत्र दक्षिण ओडिशा के रायगड़ा जिले को चुना है। जहाँ पर लगभग 50 प्रतिशत कोंध आदिवासी निवास करते हैं। उनके लोक-साहित्य को शोध का विषय चुना है। लोक साहित्य के तहत उनके 50 लोक गीतों तथा 6 लोक कथाओं ही संकलन संभव हो पाया है।

अध्याय विभाजन

शोध प्रबंध को कुल छः अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है – **'आदिवासियों का परिचय'**। इस अध्याय में 'आदिवासी' शब्द की अवधारणाओं का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आदिवासियों का सामान्य परिचय देते हुए, उनकी जीवन शैली एवं संस्कृति की चर्चा की गयी है। भारत

के आदिवासियों का वर्गीकरण भौगोलिक एवं भाषाई आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता कि भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने वाले सभी आदिवासी भाषा और रहन-सहन में भिन्न प्रतीत होते हैं। लेकिन उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दशा लगभग एक जैसी है। अंत में आदिवासी विमर्श की अवधारणा स्पष्ट करने के साथ-साथ आदिवासियों के विस्थापन पर भी प्रकाश डाला गया है।

दूसरे अध्याय का शीर्षक **'कोंध आदिवासियों का परिचय'**। इस अध्याय में सबसे पहले ओडिशा में रहने वाली जनजातियों का परिचय देते हुए। उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है। कोंध आदिवासियों के परिचय के क्रम में **'कोंध'** शब्द की व्युत्पत्ति, कोंध आदिवासियों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। कोंध आदिवासी समुदाय का सामाजिक व्यवस्था एवं उनकी पारंपरिक कलाओं की चर्चा की गई है। कोंध आदिवासियों की भाषा '**कुई**' का संबंध द्रविड़ परिवार से है। कुई भाषा को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, यथा- **कुवी एवं कुई**। इस अध्याय में **कुवी एवं कुई** बोली के अंतर्संबंध को अध्ययन करने के साथ-साथ द्रविड़ परिवार की कतिपय भाषाओं के साथ अंतर्संबंध का भी अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के पश्चात यह तथ्य सामने आता है कि कोंध आदिवासियों की भाषा, सामाजिक संरचना एवं रीति-रिवाज तेलुगु संस्कृति से काफ़ी हद तक मिलती-जुलती हैं।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है- **'कोंध आदिवासियों की लोक संस्कृति'**। इस अध्याय में कोंध समुदाय में प्रचलित विभिन्न संस्कार यथा- जन्म संस्कार, नामकरण तथा विवाह संस्कार के अंतर्गत अपहरण विवाह, प्रेम विवाह, परिवार द्वारा तय किया गया विवाह, विवाह विधि, बहु विवाह आदि पर चर्चा की गई है। मरण संस्कार पर भी विवेचन

प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय के अंतर्गत कोंध आदिवासियों के द्वारा मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व-त्योहार टाकु प्राबु, नुआ खाई, कांदुल पर्व बिचा होपा एवं घोंठ पर्व के अलावा देवी-देवताओं की पूजा विधि आदि की चर्चा की गयी है । अंत में कोंध आदिवासियों की अलौकिक शक्ति विषयक विश्वास की चर्चा शामिल है । अध्ययन के उपरांत यह बात उभर कर आती है कि कोंध आदिवासियों की संस्कृति काफी संपन्न थी । लेकिन आधुनिकता ने उनकी संस्कृति को अपने गाल में समा लिया है ।

चौथे अध्याय का शीर्षक **'कोंध आदिवासी समुदाय में लोक साहित्य परंपरा ।** इस अध्याय में सबसे पहले लोक साहित्य की अवधारणा का अनुशीलन प्रस्तुत है । शोधार्थी द्वारा क्षेत्र कार्य क्रम में कोंध समाज में प्रचलित 48 लोक गीतों का संग्रह और विश्लेषण के क्रम में गीतों का वर्गीकरण इस रूप में किया गया है, यथा- विवाह गीत, प्रेम गीत, महिलाओं के गीत, शिकार गीत, बच्चों के गीत, पति-पत्नी के गीत, भाई-बहन के गीत एवं राजनीतिक गीत आदि । इनके अलावा पाँच लोक कथाओं का संग्रह भी किया गया है। वेरियर एल्विन के संकलन में उपलब्ध कथाओं के साथ-साथ इन कथाओं का विश्लेषण करते हुए, कोंध आदिवासी समुदाय के जीवन के विविध आयामों को समझने का प्रयास किया गया है । उनके लोक साहित्य यानी संग्रहीत लोक गीतों एवं लोक कथाओं का अध्ययन करने के साथ-साथ व्याख्या और विश्लेषण भी किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय का शीर्षक है- **'कोंध आदिवासी समुदाय के साहित्य संरक्षण की चुनौतियाँ'** । इस अध्याय के अंतर्गत कोंध आदिवासी लोक साहित्य की समस्याओं का अध्ययन किया गया है । आज कोंध आदिवासियों के सामने कई प्रकार की ज्वलंत समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं । यथा-शिक्षा की समस्या, रोजगार की समस्या, विस्थापन की समस्याएँ इत्यादि । ये सभी समस्याएँ उनके सामने एक दिन में पैदा नहीं हुई हैं ,

बल्कि सभ्य समाज द्वारा लगातार किये जा रहे छल और कपट का परिणाम भी माना जा सकता है। आधुनिकता और वैश्वीकरण ने इन समस्याओं की जड़ में खाद और पानी डालने का काम किया है, जिसकी वजह से उनके पुरखों के जमाने से प्रचलित लोक साहित्य समाप्त होने के कगार पर है। इन कई बिंदुओं पर दृष्टिपात करने का प्रयास इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

इस अनुसंधान कार्य का समाहार छठे अध्याय में **'उपसंहार'** के शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है, इस अध्याय में शोध अध्ययन के दौरान जो शोध की उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं, उनका सार प्रस्तुत किया गया है। शोध के माध्यम से हम कोंध आदिवासियों की परंपरागत संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान से अवगत हो सकेंगे। उनके बीच हज़ारों सालों से प्रचलित लोक कथाएँ, कहावतें और लोक गीतों के माध्यम से उनकी जीवन पद्धति, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों का पता चलता है। कोंध आदिवासियों पर अनुसंधान की कई संभावनाएँ हैं, उनकी ओर संक्षेप में इशारा भी किया गया है।

कोंध आदिवासियों के समाज में लोक साहित्य यानी लोक गीत जो मौखिक रूप में आज भी विद्यमान है। उन लोक गीतों को संग्रहीत कर डिजिटल माध्यम से भी सुरक्षित करने का प्रयास इस अनुसंधान कार्य के अंतर्गत किया गया है। ऐसे प्रयासों से आने वाली पीढ़ियाँ अपने समाज की संस्कृति से अवगत हो सकेंगी। कोंध आदिवासियों की भाषा कुई को गहराई से अध्ययन तथा सामान्यीकरण से भविष्य में एक साहित्यिक भाषा या मानक भाषा के रूप में इसे प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जा सकता है।

भविष्य में अनुसंधान की संभावनाएँ

इस विषय क्षेत्र में भविष्य में अनुसंधान की कई संभावनाएँ हैं। यह शोध कार्य मुख्यतः रायगड़ा जिले के कोंध आदिवासी समुदाय, और उनके लोक साहित्य पर केंद्रित

है । शोध कार्य की समय-सीमा के भीतर जितने लोक गीतों का संग्रह संभव हो पाया है , इस शोध ग्रंथ में प्रस्तुत हैं । इनके अलावा कई और गीत इस इलाके में प्रचलन होने की संभावना है, उन पर कार्य किया जा सकता है । इसी प्रकार अन्य प्रांतों यथा- कोंधमाल, कालाहांडी, मलकानगिरि, कोरापुट, नबरंगपुर, गंजाम, गजपति तथा आंध्र प्रदेश के विजयनगरम एवं विशाखपाट्टणम आदि जिलों के कोंध आदिवासी समुदाय में प्रचलित लोक साहित्य का संग्रह, विश्लेषण किया जा सकता है । रायगड़ा सहित इन प्रांतों में प्रचलित कुई भाषा संबंधी पुस्तकों और कोशों के निर्माण के लिए भी प्रयास किया जा सकता है ।

सीमित संसाधनों से निर्धारित समयावधि के बीच इस अनुसंधान कार्य हेतु सामग्री संकलन और उस विश्लेषण जिस हद तक हो पाया है, मैंने पूरी विनम्रता से किया है । मैं यह दावा नहीं करना चाहता हूँ कि यह कार्य संपूर्ण और सुंपन्न है । इस दिशा में भविष्य में अनुसंधान कार्य में अपनी रुचि बनाए रखते हुए इस पूर्णता प्रदान करने की कोशिश मैं जारी रखूँगा । इस कार्य सुसंपन्न करने के लिए मुझे भारत सरकार की अध्येतावृत्ति प्राप्त हुई थी, इसके लेए मैं परम आभारी हूँ ।

भूषण पुआला

आभार

मेरी माँ, जिन्होंने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया, जो मेरे लिए बहुत सारे सपने देखी होंगी, आज जबकि मैं इतनी बड़ी उपलब्धि के लिए तैयार हूँ, लेकिन मुझे इस बात का दुःख है कि आज वह मेरे साथ नहीं है। मुझे जन्म देने वाली अपनी स्वर्गीय माँ को याद करते हुए नतमस्तक हो कर उन्हें सादर प्रणाम करता हूँ।

माँ के इस दुनिया से चले जाने का बाद परिवार में मानों हमेशा के लिए सूर्यास्त हो गया हो परिवार में अंधेरा ही अंधेरा दिखाई दे रहा था। ऐसी स्थिति में मेरे पिता जी मानसिक तनाव में आकर अपना आपा खो बैठे थे । तमाम तरह की समस्याओं ने परिवार को घेर लिया परंतु इतनी सारी समस्याओं के बावजूद भी मुझे कभी भी किसी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी। मुझे पढ़ाई के लिए प्रेरित किया। मैं पिता जी को विकट परिस्थिति में भी अपनी जिम्मेदारी धैर्य पूर्वक निभाने के लिए प्रणाम करता हूँ।

मेरे शोध निर्देशक आदरणीय डॉ. सी. जय शंकर बाबु सर, जिन्होंने मुझे पीएच.डी करने के लिए मौका दिया। प्रारंभ से लेकर अंत तक सदैव सर का मार्गदर्शन मिलता रहा । उनसे मिले महत्वपूर्ण सुझाव एवं मार्गदर्शन ने मेरे आत्मविश्वास को बढ़ाया। मैंने उसी आत्मविश्वास के साथ सभी चुनौतियों का सामना किया। जिसकी वजह से मैं यहाँ तक पहुँच पाया हूँ। शोध कार्य के पूर्ण करने में सर का सहयोग हमेशा मिलता रहा। इसलिए उनके प्रति तहेदिल से आभार प्रकट करता हूँ।

आदरणीय डॉ. पद्मप्रिया मैम और समाजशास्त्र विभाग की डॉ. सुधा मैम जो कि मेरी डॉक्टरल समिति की सदस्या रही हैं, इनका मैं हृदयरूपी आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपना महत्वपूर्ण समय निकालकर मेरे शोध कार्य हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिया। इसके साथ-साथ हिंदी विभाग के सभी गुरुजनों प्रोफेसर

विजय लक्ष्मी मैम, डॉ. प्रमोद मीणा सर, डॉ. सुरेंद्र सर एवं विभाग की संध्या मैम, देवी अक्का, आरती अक्का एवं रमणी अक्का का भी आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे हिंदी विभाग के मित्रों डॉ. जयराम पासवान, डॉ. राजेंद्र चौधरी, राकेश उपाध्याय, रामधन मीणा, डॉ. साईनाथ नागनाथ गणशेटवार, महेश जी, रामलखन राजौरिया एवं हमारे पाँच पांडव मित्रों में सुप्रिया, रहिला, दिव्या, नगेंद्र गुप्ता के अलावा शाहिदुल खान, सिराज, मिन्हाज अली तथा अन्य विभागों के मेरे प्रिय साथी डॉ. जयसिंह यादव जी, मुकेश कुमार गुप्ता, डॉ. अनुप जी, शिवनाथ शर्मा, शालो बेशारा, निलकंठ, मनोज एवं पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय के उत्कल परिषद के सभी मित्रों को तथा मेरे दुर्गापाडु गाँव एवं अन्य गाँव के संबुरू मिण्याका, गांगाधर पुआला, मोहन पुआला, सदा मांडांगी, दासरी पुआला, नागेश्वर कंडागोरी, सिमाद्री पुआला, सातामा कंडागोरी, बांगाराज तिमाका, ओशोक पुआला, लता पुआला, बाबुला पुआला, राजु पुआला, नागेश्वर मांडांगी, रमेश पुआला, कामेया पुआला, मासी पुआला, धनेश्वरी तिमाका, दामिनी पेदेंटी, सुजता तोईका, कदांबिनी पुआला, स्वमिता प्रधान, रश्मिता कांडागोरी, इन सबका स्नेह और सहयोग इस दौरान मिलता रहा। इसलिए सभी को धन्यवाद देते हुए आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे चाचा रतिकांत पुआला, चाची शुशीला पुआला मेरी पढ़ाई के प्रति रुचि एवं हौसलें को देख कर मदद करने के लिए आगे आए। उन्होंने मुझे अपने बेटे जैसे प्यार और दुलार दिया। किसी भी परिस्थिति में, चाहे आर्थिक स्थिति हो या पारिवारिक समस्या हो मुझे हमेशा उनका सहयोग मिलता रहा। आज उनकी वजह से ही इतना बड़ा सपना देख पाने में योग्य बन पाया हूँ। उनको मैं आभार नहीं देना चाहता हूँ, क्योंकि आभार और धन्यवाद देने से कर्ज की अदायगी हो जाती है। मैं इस कर्ज को अपने ऊपर बने रहने देना चाहता हूँ। दुनिया में ऐसे मदद करने वाले व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं। मेरे बड़े

भाई श्रीनिवास पुआला ने मुझे हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित किया । उनकी सकारात्मक सोच ने मुझे हर पल आकर्षित किया । मैं उनका भी शुक्रगुजार हूँ ।

इसके अलावा मेरे पुआला परिवार के सभी सदस्यों एवं मेरे गाँव के लोगों का भी आभार प्रकट करना मैं अपनी जिम्मेदारी समझता हूँ । क्योंकि उनकी वजह से ही पांडिच्चेरी जैसी जगह पर पहुँच पाया हूँ । यदि उस दौरान गाँव से सहयोग न मिला होता तो शायद ही यहाँ तक पहुँच पाता । मैं उन सबके प्रति सहृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

अंत में मैं पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग एवं केंद्रीय पुस्तकालय, संबलपुर विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, बरहमपुर विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, आदिवासी भाषा एवं संस्कृति अकादेमी भुवनेश्वर एवं अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग भुवनेश्वर तथा क्षेत्र कार्य के दौरान वे सभी लोग जिन्होंने आदिवासी गीतों एवं लोक-कथाओं को मौखिक रूप से सुनाया । मैं सभी संस्थाओं और लोगों का मेरे शोध कार्य में सहयोग देने हेतु कृतज्ञ हूँ । उन सभी का हार्दिक आभार ।

मेरे इस शोध कार्य में अन्य कई लोगों का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग मिलता रहा, जिनका शायद मैं यहाँ जिक्र करना भूल गया होऊँ, उन्हें भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करते हुए आभार व्यक्त करता हूँ ।

पहला अध्याय

आदिवासियों का परिचय

भारत एक विशाल देश है। यहाँ कई भाषाएँ और कई संस्कृतियाँ पनप रही हैं। विविधता में एकता भारत की विशिष्ट पहचान है। भारत की सांस्कृतिक विशिष्टता की रक्षा के लिए निरंतर कई प्रयास हो रहे हैं। भारत के वन्य प्रदेशों में कई आदिम आवासीय जीवन में जुड़े समुदाय प्रकृति के साथ जुड़कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे समुदायों के लिए एक आम प्रचलित शब्द है 'आदिवासी' आदिवासीय संस्कृति भी विराट भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। ऐसे आदिवासी समुदायों की संस्कृति एवं सभ्यता के अध्ययन की कई दृष्टियों से प्रासंगिकता है।

1.1.'आदिवासी' की अवधारणा

आदिवासी शब्द सामान्य रूप से दो शब्दों के मिलन से बना है, आदि + वासी जिसका अर्थ 'मूल निवासी या आदिम अदिवासी'। भारत में आदिवासी समुदाय को विविध नामों से अभिहित किया जाता है। यथा- अनुसूचित जनजाति, वनवासी, गिरिजन, देशज, जंगली, बर्बर, दस्यु, राक्षस, असुर आदि। अंग्रेजी में एबोरिजिनल (aboriginal), इंडिजेनस (indigenous), ट्राइब (tribe) आदि संज्ञाएँ प्रचलित हैं।

1.1.1. अनुसूचित जनजाति

'अनुसूचित जनजाति'[1] भारतीय संविधान में पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत अनुच्छेद 16 धारा 342 में विशेष वर्ग को 'अनुसूचित जनजाति' के नाम से मान्यता दी गई है । अनुसूचित जनजाति (scheduled tribes) प्रशासनिक शब्द है । इस शब्द से विशेष कबीलों की पहचान होती है और संविधान में विशेष स्थान देने के लिए 'अनुसूचित जनजाति' शब्द का उल्लेख किया गया है । जनजाति शब्द से उनकी संस्कृति, इतिहास एवं अस्मिता का बोध नहीं होता है । डॉ.राम दयाल मुंडा ने पहली बार संविधान में 'आदिवासी' शब्द को दर्जा देने का प्रस्ताव रखा था । लेकिन इस प्रस्ताव को नजरअदांज करके अंततः संविधान में 'अनुसूचित जनजाति' शब्द को मान्यता दी गई ।

1.1.2. वनवासी (जंगली)

'वनवासी'[2] शब्द का प्रयोग जो लोग वन, गिरि एवं झरने के किनारे बस्ती बना कर जीवन निर्वाह करते हैं । उस जन समुदाय को वनवासी या जंगली कहा गया है । आदिवासी का संबंध प्रमुख रूप से जल, जंगल और जमीन से है । वे आहार की खोज में वन एवं जंगलों में कठोर धूप में घूमते हुए शिकार करते हैं । इसलिए उनको 'वनवासी' या जंगली नाम से जाना जाता है । जिस प्रकार जंगलों में रहने वाले जानवरों को जंगली कहा जाता है, उसी प्रकार तथाकथित मुख्य

1 www.lawmin.nic.in, Constitution of India, p. 211

2 रत्नाकर भेंगरा, सी.आर. बिजोय, सं.रमणिका गुप्ता (2008) आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन-पृ.29

धारा के सभ्य जन इन भोले-भाले आदिवासियों को 'जंगली' कह कर पुकारते हैं। निश्चित रूप से इस तरह की शाब्दिक परिकल्पनएँ आदिवासियों के लिए अत्यंत छिछोरी प्रतीत होती है।

1.1.3. गिरिजन

'गिरिजन' का तात्पर्य यह है कि जो जन समुदाय गिरि पर्वत-पहाड़ों के कंदराओं में निवास करते हैं, उन्हीं को 'गिरिजन' कहा जाता है। गांधीजी ने आदिवासियों के संदर्भ में 'गिरिजन' शब्द का प्रयोग किया है।

1.1.4. देशज 'इंडिजेनस'[3]

'Indigenous' शब्द '*indigena'* तथा 'ous' से बना है। इस शब्द का अर्थ सामान्यतः क्षेत्र (soil, region) के लिए प्रयोग होता था। औपचारिक रूप से '*Indigenous'* शब्द की उत्पत्ति 1864 ई. में हुई। Sir T. BROWNE का कहना है कि अफ्रीका से स्थानांतरित हुए 'निग्रो' जनजाति के लिए *'indigenous'* शब्द प्रस्तुत हुआ है, तथा यहीं से यह शब्द लोक प्रचलन में आया। स्वदेशी मिट्टी में पैदा हुए भूमि जनों के लिए यह शब्द व्यवहारिक रूप में प्रयुक्त होता है। इंडिजेनस शब्द के पर्याय के रूप में देशी, स्वदेशी, देशज आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

3 The shorter Oxford English Dictionary on Historical Principles, p. 2359

1.1.5. राक्षस (असुर)

भारत के मूल निवासियों को आर्यों ने प्राचीन ग्रंथों (रामायण) में राक्षस, असुर आदि नामों विश्लेषित किया है। इसके बारे में डॉ.विनायक तुमराम लिखते हैं कि-

> *"दैत्य, पिशाच, राक्षस, असुर ऐसे अनेक उपहासपूर्ण शब्दों में अनार्यों के अस्तित्व की चर्चा वैदिक साहित्य तथा रामायण-महाभारत आदि ग्रथों में की गई है। इससे यह आसानी से समझा जा सकता है कि इनके जीवन को देखने की तत्कालीन समाज की नीति क्या होगी ?।"*[4]

इतिहास की ओर गौर किया जाए तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य एवं अनार्यों के बीच संघर्ष होता रहा, अर्थात आर्यों ने अनार्यों को परास्त कर दास बना लिया। फलस्वरूप आर्यों द्वारा रचित धर्म ग्रंथों में आदिवासियों को राक्षस एवं असुर नामों से संबोधित किया गया है।

1.1.6. असभ्य

'असभ्य'[5] वह है जो मानव समाज के लिए योग्य न हो या जो मानव समाज से बाहर है, उसे असभ्य कहा गया है। आदिवासियों का अपना पृथक् समाज रहा है। वे सदियों से सामाजिक सरोकर से बंधे हुए हैं। उनकी सभ्यता एवं संस्कृति कायम रही है, तथा अपनी संस्कृति को अक्षुण्य बनाए रखने का प्रयास करते रहे हैं। तथाकथित मुख्य धारा द्वारा उनके लिए असभ्य शब्द प्रयोग करना अत्यंत ही अनुपयुक्त एवं दुखद है।

---

4 डॉ.विनायक तुमराम, सं. रमणिका गुप्ता, (2008) आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन- पृ.25

[5] होरॉल्ड एस.तोपनो, अश्विनी कुमार पंकज, (2015) उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष, विकल्प प्रकाशन -पृ.16

1.1.7. *एबोरिजिनल*[6]

'एबोरिजिनल' *(Aboriginal)* शब्द सबसे पहले यूरोपीय उपनिवेशवादियों द्वारा प्रयोग में लाया गया था। इसका हिंदी रूपांतरित 'आदिम स्वदेशी' होता है। इटली एवं ग्रीस देश में आदिवासियों के लिए 'एबोरिजिनल' शब्द का प्रयोग एक समूह के अर्थ में होता था। अंग्रेजी में प्रचलित *'aborigines'* शब्द के संबंध में *'The Oxford English Dictionary on Historical principles'* में उल्लेख मिलता है कि यह शब्द लैटिन के *'aborigines'* से उत्पन्न हुआ है, जिसका प्रयोग सर्व प्रथम 1547 में हुआ था। यह शब्द *'ab'* तथा '*origin'* के योग से बना है, जिसका अर्थ उक्त कोश में *'from the beginning but this is not certain'* (आरंभ से, मगर यह निश्चत नहीं) के रूप में प्रयुक्त होते हुए अग्रांकित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है –*The inhabitants of a country*. इसी अर्थ में 1788 में *'aboriginal'* शब्द का प्रयोग हुआ था, जिसका अर्थ *Primitive, Indigenous, Earlier* (European colonists) द्वारा के रूप में दिया गया है। रिजले, लेके, टैल, मार्टिन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने 'एबोरिजिनल' शब्द का प्रयोग किया है।

1.1.8. ट्राइब्स

अंग्रेजी शब्द '*ट्राइब'(tribe)* लैटिन शब्द ट्राइब्स (tribes) से बना है। नृवैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग 'कुटुम्ब' के अर्थ में किया। तमाम इतिहासकार, भाषावैज्ञानिक, नृवैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों ने आदिवासियों के सामाजिक,

6 The shorter Oxford English Dictionary on Historical Principles, p. 6, 1057

राजनीतिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को मद्देनजर रखते हुए विविध शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे- जनजाति, वनवासी, गिरिजन, राक्षस, असुर, असभ्य, देशज (Indigenous), एबोरिजिन ट्राइब (Aboriginal tribe), ट्राइब (tribes) आदि ।

1.2. आदिवासियों का सामान्य परिचय

भारतीय समाज विभिन्न सांस्कृतिक विविधताओं का समाज रहा है । जहाँ पर विविध जातियाँ एवं अलग- अलग संप्रदाय के लोग निवास करते हैं । विश्व के सबसे अधिक आदिवासी समुदाय भारत में निवास करते हैं । उपर्युक्त 'आदिवासी' शब्दों के विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं । वे हजारों सालों से वन, जंगल एवं पहाड़ों के दुर्गम क्षेत्रों में निवास करते आये हैं । सामाजिक वैज्ञानिकों, नृवैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों के द्वारा ऐतिहासिक सिद्धांतों एवं पुरातात्विक खोजबीनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारत में आदिवासी समुदाय सबसे पहले सिंधु नदी के किनारे पर जीवन-यापन करते थे । वहाँ पर उनकी संस्कृति एवं सभ्यता का विकास हुआ । किंतु वहाँ के मूल निवासी बाहर के आक्रमणकारियों द्वारा शोषित हुए । इसलिए आपस में संघर्ष होता रहा है । लेकिन आखिरकार मूल निवासी पराजित हुए । ये मूल निवासी आर्यों के अन्याय एवं अत्याचार सहन करने के बावजूद भी वे हर्ष-उल्लास से जीवन जीते रहे । इसके संदर्भ में हरिराम मीणा लिखते हैं,

> *"आर्य-अनार्य संग्राम श्रृंखला के दौरान जो ज्ञात मूल-जन विजित कर लिये गये और दास, सेवक या शुद्र के रूप में जिनके साथ व्यवहार किया गया । वे आज का दलित समाज है जिसने मुख्य रूप से अछूत होने का दंश सहा है । जो जन समूह विजेताओं की पकड़ से बाहर रहे, खदेड़ दिये या*

बचकर दूर-दराज सुरक्षित दुर्गम जंगलों व पहाड़ों में शरण लेने को विवश हुये वे आज के आदिवासी कहे जा सकते हैं।"[7]

लेकिन कालांतर में विकास की प्रक्रिया में जन जीवन में परिवर्तन हुआ। भारत के मूल निवासी अनार्यों से परास्त होने पर अंत में जंगलों की तरफ चले गये होंगे। लेकिन आज की स्थिति विपरीत है। अब औधोगिकरण एवं विकास के नाम पर राज्य एवं उद्योगपतियों द्वारा उनके संसाधनों तथा जमीनों को छीन कर उन्हें शहर की तरफ स्थानांतरित होने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इस तरह से नए सामाजिक परिवेश जिसके वे सदियों से आदी नहीं रहे हैं, जिसमें वे असहज है तथा उनकी सांस्कृतिक अस्मिता खतरे में है। मनुष्य प्राकृतिक परिवेश के साथ जुड़ा हुआ है, और प्राकृतिक परिवेश से समायोजन स्थापित कर अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता है। आदिवासी समुदाय पर्वत शिखरों पर अनुकूल परिवेश में जीवन-यापन करता है। वह जंगलों, पहाड़ों एवं प्राकृतिक संसाधन के साथ सहाचर्य स्थापित करके रहता है। इसलिए आदिवासियों को प्रकृति का पूजक या वन पुत्र भी कहा जाता है। दुनिया के सभी आदिवासी अंचलों में प्राकृतिक संसाधन कूट-कूट के भरे हैं। लिहाजा आज उस प्राकृतिक संसाधनों पर तथाकथित सभ्य समाज के लोग गिद्ध दृष्टि डाले हुए हैं।

1.2.1. आदिवासियों की जीवन शैली

आदिवासियों की जीवन शैली की अपनी अलग पहचान है। उनकी जीवन पद्धति को समझने से पहले उनके सामाजिक सरोकारों के प्रत्येक पहलू को समझने की जरूरत है। सांस्कृतिक परंपराओं को भी उजागर करने की आवश्यकता है। आदिवासी समाज में कई प्रकार की मान्यताएँ विद्यमान हैं। उनके समाज में

[7] हरिराम मीणा, (2013) आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ.सं-2

परंपरागत रूप से शयन गृहों या युवा गृहों की व्यवस्था पाई जाती है। इस प्रकार प्रथा की सदियों से चली रही है। उसमें अविवाहित स्त्री-पुरुष के मनोरंजन एवं सुख की अनुभूति हेतु इस प्रकार की संस्था की स्थापना की जाती है, जिसमें युवक-युवतियाँ रात को इकट्ठे होती हैं और उनके बीच कर नृत्य-संगीत के साथ-साथ प्रेमालाप भी होता है। वहीं से लड़का अपनी पसंद की लड़की को घर लेकर जाता है। फलस्वरूप लड़की के घर वालों से समझौता होने पर उनकी रीति-रिवाज के अनुसार मद्यपान होता है। तत्पश्चात गाँव के मुखिया के द्वारा शादी का मुहूर्त तय होता है, और औपचारिक रूप से शादी संपन्न होती है। इसलिए आदिवासी समाज में शयन गृह की व्यवस्था का विशिष्ट महत्व है। लेकिन वैश्वीकरण के इस दौर में बदलते हुए सामाजिक परिवेश में यह परंपरा एवं पुरानी सामाजिक सभ्यता लगभग समाप्ति होने के कगार पर है। दूसरे कई अन्य आदिवासी समुदाय में इस व्यवस्था को 'घोटुल' भी कहते हैं। भारत के प्रत्येक आदिवासी समुदाय में यह संस्था विद्यमान है। जिसे भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। इस संस्था में सामूहिक मनोरंजन के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक सरोकारिता संबंधी गतिविधियों की अभिव्यक्त होती है। पर्व-त्यौहारों के अवसर पर हर गोत्र के अविवाहित स्त्री-पुरुष एकत्रित हो कर हर्ष-उल्लास से उत्सव मनाते हैं, और इस अवसर पर लड़के-लड़की एक दूसरे के संपर्क में आते हैं तथा उनमें यौन संबंध भी स्थापित हो जाते हैं। जिससे उनका यह संबंध अंततः शादी का रूप धारण कर लेता है। इस संस्था में विवाहित स्त्री-पुरुष का निषेध रहता है। उसमें समुदाय के एक बुजुर्ग व्यक्ति को बुलाया जाता है। वह अपनी कलात्मक प्रतिभा एवं अनुभव से युवाओं को समाज के पारंपरिक पुश्तैनी ज्ञान-विज्ञान, शिकार की कला एवं यौन संबंधों के बारे में प्रशिक्षण देता है। इस संस्था में इस प्रकार की गतिविधियों के साथ-साथ नृत्य एवं संगीतों से यहाँ का वातावरण आमोद-प्रमोद से गूँज उठता है। कुछ आदिवासी समाजों में यह संस्था नहीं पायी जाती है। जिस समुदाय में युवा

गृहों की परंपरा नहीं होती है, वे दूसरे गाँव में नृत्य प्रदर्शन के लिए जाते हैं। उस दौरान लड़के-लड़कियों में निकट संबंध स्थापित हो जाते हैं। तथा आपस में प्रेमालाप करके विवाह बंधन में बंध जाते हैं। इस प्रकार के विवाह को अपहरण विवाह कहते हैं, और ऐसी विवाह प्रथा को आदिवासी समाज द्वारा स्वीकृति प्राप्त है। इस संस्था का महत्व इसलिए भी है कि वे दिन भर कठिन परिश्रम करके रात को मनोरंजन करना अनिवार्य समझते हैं। इस संस्था के माध्यम से युवक-युवतियों के बीच विवाह संबंध ही स्थापित करना नहीं होता बल्कि परस्पर आत्मिक सौहार्द संबंध स्थापित करना भी है, साथ ही साथ उनके सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलुओं पर विचार-विमर्श करने का अवसर प्राप्त होता है। अतः उनकी प्राचीन विशिष्ट संस्कृति के साथ-साथ उनके लोक गीतों एवं लोक नृत्य को संरक्षित रखने में यह संस्था अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होती है।

प्रत्येक आदिवासी समाज में विलक्षण प्रतिभा होती है। उनके दैनंदिन जीवन में उपयोग होने वाली वस्तुओं में एक अद्‌भूत कला प्रतिबिंबित होती हैं। यथा- धनुष, बाण, रस्सी, कुल्हाड़ी, चाकू, कुदाल, फावड़ा, हल आदि प्रमुख है। बाँस के माध्यम से एक गोलाकार टोकरी बनाई जाती है। उस टोकरी के अंदर अनाज रखा जाता है, और उसक ऊपर ढ़क्कन लगाया जाता है। दैनिक उपयोग में आने वाला एक बरतन पेड़ को काट कर बनाया जाता है। इसका उपयोग अनाज मापने में उपयोग किया जाता है। बैठने के लिए एक प्रकार की चौकी पेड़ से बनाई जाती है, और गाय एवं बैलों के गले में पहनाई जाने वाली घंटियाँ भी पेड़ से बनाई जाती है, इससे यह प्रतीत होता है कि आदिवासी समाज में कलात्मक प्रतिभा है।

जब से मानव ने अपनी संस्कृति का विकास किया तब से ही मानव के बीच नातेदारी व्यवस्था प्रारंभ हुई। इसके संदर्भ में डॉ.हरिश्चंद्र उप्रेती की पुस्तक में उल्लेख है,

"नातेदारी व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे संबंध गिने जा सकते हैं जो कि अनुमानित अथवा रक्त संबंधों पर आधारित होते हैं।"[8]

नातेदारी व्यवस्था में व्यक्ति अपने समाज में इर्द-गिर्द रहने वाले व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करता है, जिससे घोर परिस्थियों में एक दूसरे का सहयोग प्राप्त करता है। यह व्यवस्था कई तरह के संबंधों पर आधारित है, जैसे रक्त संबंध एवं विवाह संबंध। रक्त संबंध में माता, पिता, भाई-बहन, भाई-भाई एवं बहन-बहन आदि आते हैं। विवाह संबंध समाज द्वारा मान्यता प्राप्त है जो एक दूसरे से विवाह करके संबंध स्थापित करता है। नातेदारी व्यवस्था प्रत्येक समाज में मिलती है, परंतु आदिवासी समुदाय में इसका विशेष महत्व है। आदिवासी समुदाय में नातेदारी व्यवस्था एक लंबी परंपरा रही है। नातेदारी व्यवस्था सामाजिक संरचनाओं का एक अंग है। नातेदारी व्यवस्था में लोगों के बीच एक तरह की सहकारिता, सामूहिकता, करुणा, स्नेह, एवं ममता अटूट भाव रहता है। जिससे वे विपरीत परिस्थितियों में भी आसानी से स्थिति का सामना कर सकते है। आदिवासी समाज के सामाजिक रीति-रिवाज, पूजा-विधि, पर्व-त्योहार, जन्म-मरण एवं विवाह आदि महत्वपूर्ण अवसरों पर अड़ोस-पड़ोस के लोग एवं रिश्तेदार एकत्रित होते हैं, और ऐसी अवसरों पर अपना सुख-दुःख आपस में बांटने के साथ-साथ हर्ष-उल्लास से नृत्य प्रदर्शन करते हैं। उनमें मानवीय रिश्तों की भी बहुत लंबी परंपरा रही है, जो सदियों पुरानी है। वे दूर-दराज दुर्गम स्थानों में निवास करते है तथा उनके आचार-विचार एवं मानवीय गुण तथाकथित सभ्य समाज से बिलकुल भिन्न लक्षित होते है। उनमें सामूहिकता एवं एकता आदि मानवीय गुण झलकते है। इसलिए आदिवासी समुदाय में नातेदारी प्रथा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आदिवासियों के मानवीय रिश्तों एवं संबंधों के बारे में डॉ.नरेंद्र व्यास लिखते हैं –

[8] डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती , (2000) भारतीय जनजातियाः संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 149

"मानवीय रिश्तों की गहराई, इनके प्रतिदिन के आचार-विचार एवं अभित्य सत्कार में परिलक्षित होती है। अतिथि देवोभवः की कल्पना को सत्कार स्वरूप देने में आदिवासी किसी से पिछड़े नहीं है और यह जाहिर है कि गरीब से गरीब परिवार अपने को भूखा रख लेगा, पर घर आये मेहमान को भूखा नहीं रखेगा।"[9]

इसलिए आदिवासी समाज की मूल प्रवृत्ति, जीयो और जीने दो की रही है।

मानव संसार का सर्व श्रेष्ठ प्राणी होते हुए भी वह मानवत्तर अलौकिक शक्ति पर दृढ़ विश्वास रखता है। इसलिए मानव भयभीत हो कर जादू-टोना एवं अदृश्य शक्तियों का सहारा लेता है। आदिवासियों में पुनर्जन्म की परिकल्पना एवं आत्मा की अमरता तथा अलौकिक शक्ति या अदृश्य शक्तियों में दृढ़ आस्था रही है। आदिवासी खेती करते वक्त यदि पर्याप्त बारिश नहीं होती है तो वह ग्राम देवता की आराधना करता है। ताकि पर्याप्त बारिश हो। इसलिए धारेणी पेनु (ग्राम देवता) नारियल एवं मुर्गी की बलि दी जाती है। आदिवासियों का मानना है कि अगर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसकी आत्मा रात को घर पर आती है। इसलिए आत्मा का निशान निश्चित करने के लिए घर के द्वार पर राख रखा जाता है। वे भूत-प्रेत एवं पूर्वजों में अधिक विश्वास करते हैं, तथा भोजन करने से पहले वे देवी-देवता एवं पूर्वजों के लिए खाना रखा जाता है। तत्पश्चात् एक साथ बैठ कर भोजन किया जाता है। उनका मानना है कि भोजन के दौरान पूर्वज घर पर आते हैं। आदिवासी प्रकृति के पहाड़-पर्वत, पेड़-पौधों को देवी-देवता के रूप में पूजा करता है। अगर कोई पूजा किये बिना किसी पेड़-पौधों को काटता है तो वहाँ का देवता उसको कई बीमारियों से ग्रसित कर देता है, और वह उस रोग से मुक्ति पाने के लिए गाँव के भगत या भगतिन के पास जाता है। भगत मंत्र फूंक कर देवता को प्रसन्न करने हेतु गाय, बकरी एवं मुर्गी की बलि देने का वचन देता है, जिससे उसे

[9] डॉ. नरेंद्र व्यास, (2006) आदिवासी विकास एवं प्रथाएँ, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, पृ.85

उस रोग से मुक्ति मिल सके। आदिवासी समाज में एक और अदृश्य शक्ति है। उनके सामाजिक पर्व-त्यौहारों के दौरान वाद्ययंत्र बजाया जाता है। उस वक्त महिलाओं की आत्मा में देवता प्रवेश करती है, जिससे महिलाएँ बेबश हो कर नाचने लगती है। जब बाजा बंद हो जाता है। तब वह होश में आती है। दरअसल आदिवासी समाज में पूर्वजों की गूढ़ शक्तियाँ, मृतात्माओं तथा भूत-प्रेत के प्रति दृढ़ आस्था है। इस तरह की गूढ़ शक्तियाँ को प्रसन्न करने के लिए पशु की बलि दी जाती है, इस प्रकार की अद्‌भुत शक्तियाँ आज भी आदिवासी समाज में विद्यमान है।

आदिवासी समुदाय अलग-अलग बस्तियों में निवास करता है। उस गाँव में पृथक-पृथक परिवार एवं अन्य उपजातियाँ भी रहती हैं, जो भिन्न-भिन्न गोत्रों में विभक्त हैं। उदाहरण के रूप में ओड़िया के कोंध आदिवासियों की गोत्र व्यवस्था को देख सकते हैं। यथा-तिमाका, मिण्याका, कंडागोरी, टुणुका या पुआला आदि प्रमुख है। इन गोत्रों के बार में कई दंतकथाएँ प्रचलित हैं। वे अपने गोत्र से विवाह करना निषेध समझते हैं, इसलिए अन्य गोत्र के साथ विवाह करते हैं।

प्रत्येक आदिवासी समुदायों में अपनी अलग-अलग प्रशासनिक या पंचायती व्यवस्था विद्यमान है। जहाँ पर उन्हें अपने-अपने सामाजिक नीति-नियमों का पालन करना होता है। गाँव का मुखिया जिन नीति-नियमों का निर्धारण करता है, उसका गाँव वाले तहेदिल से स्वागत करते हैं। पंच का मुखिया बनने के लिए उसमें कई प्रकार की योग्यताएँ होना आवश्यक होती हैं, जैसे वह गाँव का बुजुर्ग सदस्य हो, समाज के पारंपरिक ज्ञान-विज्ञान का जानकार हो, सरल स्वभाव वाला हो एवं उनको अपनी भाषा की कहावतें, दंतकथाएँ आदि की समझ हो, ये सब योग्यताएँ जिसके पास होती है, उसे ही मुखिया बनाया जाता है। गाँव में किसी परिवार के जमीन-जयदाद के लिए झगड़े हो, या किसी सामूहिक समस्या का निवारण करना हो, इस प्रकार की समस्याओं का समाधान गाँव के पंचायत में ही पंचों के आपसी विचार-विमर्श द्वारा करने का प्रयास किया जाता है। अगर कोई इन नीति-नियमों

का उल्लंघन करता है तो उसको गाँव से बहिष्कृत किया जाता है, नहीं तो उसे सामान्य सजा दी जाती है। आदिवासियों की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैः-

- आदिवासी समुदाय को भौगोलिक दृष्टि से अलग पहचान होती है।
- आदिवासी समुदाय के मुख्य स्रोत जल, जंगल, जमीन हैं।
- उनकी अलग-अलग भाषाएँ, संस्कृति एवं परंपराएँ हैं।
- आदिवासी समाज में स्त्रियों को स्वतंत्रता एवं सम्मान मिलता है।
- उनके समाज में एकता, सहनशीलता, संवेदनशीलता, स्वतंत्रता एवं संहिता का भाव है।
- आदिवासी समाज में जाति प्रथा का निशान नहीं है।
- उनमें सामूहिक चेतना एवं आपस में सहयोग भाव झलकता है।
- उनके समाज में अपनी अलग प्रशासनिक व्यवस्था है।
- उनमें पारंपरिक पुश्तैनी ज्ञान एवं अलौकिक शक्तियों पर दृढ़ विश्वास है।

1.2.2. आदिवासियों की संस्कृति

दरअसल संस्कृति मानव जीवन में घटित होने वाले प्रत्येक इकाई को स्पर्श करती है। सभ्यता के प्रारंभिक चरण से ही मानव संस्कृति का विकास होता रहा है। मानव संसार में चेतनशील प्राणी होने के नाते उसकी आस्था, मूल्य, मान्यताएँ, रीति-रिवाज, धर्म एवं भाषा ही संस्कृति है। मानव दैनंदिन जीवन में जो कार्य करता है, उसे ही संस्कृति कहा जाता है। मानव समाज का प्रभुत्व शील प्राणी हो कर सामाजिक संगठन का संचालन करता है।

प्रत्येक मानव समुदाय में बुनियादी तत्वों की आवश्यक होती हैं, जैसे- रोटी, कपड़ा एवं घर आदि। लिहाजा मानव अन्य प्राणी से इतर है। तथा उसकी विशेषताओं के कारण उसे मानव कहलना का अधिकार प्राप्त है। प्रारंभ से ही मानव संस्कार का संचित है, और वह संचित संस्कार को अपना कर भावी पीढ़ी के

लिए एक नयी संस्कृति का विकास करता है। मानव की सामाजिक संरचनाओं के विकास के साथ ही संस्कृति का जन्म होता है। दुनिया के प्रत्येक मानव समूहों में संस्कृति की विशिष्टताएँ पायी जाती है। यह विशिष्टता आदिवासी समुदाय में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। आदिवासी समुदाय के सांस्कृतिक पहलुओं को समझने के लिए उनके रहन-सहन, आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान एवं सामाजिक क्रिया-कलापों और उनके सामाजिक संबंध एवं संरचनाओं के प्रत्येक पहलुओं को समझने की जरूरत है। सामाजिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बावजूद उनमें कुछ सामान्य विशेषताएँ भी पाई जाती हैं।

भारत की संस्कृति दुनिया की सबसे प्राचीन संस्कृतियों में से एक है। जहाँ पर तरह-तरह की संस्कृतियाँ विद्यमान है, इसलिए भारत को विविध संस्कृतियों का देश कहा जाता है। इसमें विविधता में एकता का दर्शन होता है। जिसमें कई संस्कृतियाँ एक दूसरे से घुली-मिली हैं। लेकिन सभी संस्कृतियों की अपनी एक अलग स्वतंत्र पहचान भी है, जो परंपरा से चली आ रही है। इधर भूमंडलीकरण और बाजारबाद आने के बाद से इस पर काफी असर पड़ा है। क्योंकि भूमंडलीकरण का जरिए नव सामराज्यवादी है, जिसके परिणाम स्वरूप कई समुदायों की संस्कृति की विशिष्टता समाप्त होने के कगार पर है। जिसे हम मूल संस्कृति या आदिवासी संस्कृति कह सकते हैं।

आदिवासी सदियों से जंगलों, पहाड़ों दुर्गम स्थानों में रह कर अपनी प्राचीन संस्कृति को कायम रखा है। सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक असमानताओं के बावजूद, भारत के आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक विचारधारा में कुछ सामान्य तत्व समान रूप से विद्यमान हैं। उनकी संस्कृति में मानवीय मूल्यों का उद्वेलन होता हैं। आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। उनके समाज में पूर्व से प्रचलित मान्यताएँ विद्यमान है, उनमें विद्यमान विधि-विधाओं से परिपूर्ण लोक गीत, लोक कला, शादी-ब्याह के गीत एवं उत्सव के दौरान गाये जाने वाले लोक गीत, श्रम गीत तथा देवी-देवताओं के गीतों के जरिए अपनी जीवन की त्रासदी को

दूर करता है। इस प्रकार की संस्कृति आदिवासियों के भौतिक जीवन पर आधारित है।

आदिवासियों का धर्म दुनिया के सभी धर्मों से पृथक् है, जो प्रकृति का धर्म है। वह प्रकृति को ही सृष्टि कर्ता या न्याय कर्ता मानता है। उसी को ही पूजा करता है। अगर आदिवासियों के जीवन में किसी भी प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं तो उन कठिनाईयों से मुक्ति हेतु इष्ट देवता की आराधना करते हैं। इसलिए उनका न कोई निर्दिष्ट धार्मिक स्थल है, न कोई धर्म है। उनका केवल प्रकृति का धर्म या सनातन धर्म है। आदिवासी न हिंदू , न ईसाई, न मुस्लिम है। इसलिए उनका धर्म एवं दर्शन अलग दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्वों पर आधारित है, किंतु आज आदिवासी समाज में भी धर्मांतरण की प्रक्रिया शुरु हो गई है। जिससे आदिवासी समाज की प्राचीन सांस्कृतिक अस्मिता खतरे में है।

आदिवासियों के आचार-विचार, वेश-भूषा, रहन-सहन, विवाह, जन्म एवं मृत्यु आदि संस्कारों को संस्कृति में शामिल किया जा सकता है। उनकी सामाजिक गतिविधियाँ पूजा-पद्धति, कर्म-कांड परंपरागत विधि-विधान के अनुसार होते हैं। मानव की उत्पत्ति, पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधों के उत्पत्ति के बारे में उनकी लोक कथाओं तथा लोक गीतों में मौखिक रूप से विद्यमान है। आदिवासी समाज आज भी सामाजिक एकता या सामुदायिक सहचरता जैसे मानवीय मूल्यों पर आधारित है जो उनकी जीवन शैली एवं पद्धति में प्रस्फुटित होती है।

भारत में जाति व्यवस्था हजारों सालों से चली आ रही है। इस जाति व्यवस्था की वजह से मानव पशुवत जीवन जीने को विवश हो जाता है। मानव विकास की चरम सीमा में पहुँचने के बावजूद जाति व्यवस्था का दाग कहीं न कहीं विविध रूपों से विद्यमान है। परंतु आदिवासी समाज में इस प्रकार की जाति व्यवस्था नहीं पाई जाती है। इसके कई कारण हो सकते हैं, इसका मूल कारण यह है कि वे दूर-दराज के दुर्गम स्थानों में निवास करते रहे तथा बाहरी सभ्यता के संपर्क में नहीं आये, और वे उस भौगोलिक क्षेत्र में अपनी संस्कृति का विकास करके

वहीं पर बस गये । इसलिए बाहरी जहरीली जाति प्रथा से दूर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप आदिवासी जाति विहीन समाज स्थापित करने में कामयाब रहा है । भारत के संविधान में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजाति' कहा गया है, इसका मतलब यह है कि जो तबकें सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में पीछे हैं, उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है, इस शब्द से आदिवासियों की अस्मिता का बोध नहीं होता है । जिस समाज में 'जाति' संज्ञा है ही नहीं । उस समाज के तबकों को जाति संज्ञा से परिभाषित किया जाता है, ये कितना बड़ा अन्याय एवं साजिश है ।

वस्तुतः आदिवासी समुदाय में समानता संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । विडंबना यह है कि आज के उदारीकरण के दौर में मानव यांत्रिक जीवन जी रहा है । ऐसी स्थिति में मानव अपनी मानवीयता खोता जा रहा है । परंतु आदिवासी समाज में कुछ हद तक मानवीयता विद्यमान है । आदिवासी आज तक समूहों में रहते आया है । उनके सामूहिकता में ही मानवीय मूल्य उद्वेलित होते हैं । भारत के प्रत्येक आदिवासी समुदाय में सामूहिक भावनाओं की परंपरा कायम रही है ।

भारत के आदिवासियों में जाति समानता के साथ-साथ लिंग समानता भी मिलती है । उनके समाज में आर्थिक दृष्टि से अमीर-गरीब का भेद तो है । किंतु दूसरे समाज की तरह असंवेदनशील रवैया नहीं है । उनमें गरीबों के प्रति सहानुभूति, संवेदनशीलता एवं सहयोग करने की प्रवृत्ति है । उनके समाज में धार्मिक स्तर यानि पूजा-विधि करने के लिए सब को समान अधिकार प्राप्त है । चाहे वो संपन्न परिवार का ही क्यों न हो या फिर गरीब घर का ही क्यों न हो, सब के लिए समान अधिकार है । आदिवासियों के सामाजिक गतिविधियों में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार प्राप्त है । परंतु कई समुदाय में पितृसत्तात्मक व्यवस्था प्रधान रही है । मगर उनके समाज में नारी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । इसलिए आदिवासी नारी स्वतंत्र, परिश्रमी एवं साहसी होती है, और वह अपनी मन पसंद के लड़के से

विवाह कर सकती है। आदिवासी समाज के लोग जिस तरह बेटा पैदा होने से खुश होते हैं, उतनी ही प्रसन्नता उनमें बेटी पैदा होने से भी होती है। उनके समाज में नारी भी मर्दों की तरह काम करती है। वह खेती-बारी करती है। झरना से पानी एवं जंगल से लकड़ी लाती है, वह गाय-भैसों को चराती है, और बच्चों को पालती है, इससे यह प्रतीत होता है कि आदिवासी नारी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। प्रत्येक समाज की स्त्री का अपने शरीर को सजाकरसुंदर दिखाने की इच्छा होती है। आदिवासी स्त्री का सौंदर्य प्रकृति से ही आभास होती है। इसलिए वह जंगल के भिन्न-भिन्न फूलों से बने हुए गहनें सजाकरअपनी खूबसूरती दिखाने का प्रयास करती है। वे गहनों के प्रति विशेष लगाव होती है। प्रत्येक आदिवासी समाज में गहने पहनने का तरीका अलग किस्म का होता है। उनके गहने सोने के नहीं बल्कि उनके गहने प्रायः गिलट, चांदी तथा अन्य धातुओं से बने होते हैं, और वे लकड़ी, पंखों, सींग, हाथी दांत एवं कौड़ी आदि से बने गहने भी बड़े शौक से पहनती हैं।

1.3. भारत के आदिवासियों का वर्गीकरण

भारत के मूल निवासी एक निर्दिष्ट भू-भाग में निवास करते हैं और विविध हिस्सों में बँटे हुए हैं। जैसे-ओड़िया, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, राजस्थान, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल, गुजरात एवं उत्तर पूर्व राज्यों में सबसे अधिक आदिवासी निवास करते हैं। इनकी संख्या लगभग 104.28 मिलीयन है, जो कुल संख्या का प्रतिशत 8.6% है। गुरंग, लिबू, डाफल, मिरी, कुकी, लुसाई, यकम, संथाल, मुंडा, उमंडा, उरांव, हो, भूमिज, खडिया, बिरहोर, जुआग, खोंड, कोंध, सवरा, गोंड, भील, मीणा, बैगा, कोरकू, कमारों आदि प्रमुख आदिवासी समुदाय हैं।

2011 की जनगणना के आधार पर विभिन्न राज्यों में आदिवासियों की संख्या का विवरण नीचे प्रस्तुत है।

सारणी – 1

क्र.सं	राज्यों का नाम	कुल जनजातीय जनसंख्या	जनजातीय प्रतिशत
1	जम्मू एवं काश्मीर	14,93,299	11.9
2	हिमाचल प्रदेश	3,92,126	05.7
3	राजस्थान	92,38,534	13.5
4	सिक्किम	2,06,360	33.8
5	अरुणाचल प्रदेश	9,51,821	68.8
6	नागालैंड	17,10,978	86.5
7	मणिपुर	9,02,740	35.1
8	मिजोरम	10,36,115	94.4
9	त्रिपुरा	11,66,813	31.8
10	मेघालय	25,55,861	86.1
11	असम	38,84,371	12.4
12	झारखंड	86,45,042	26.2
13	उडीशा	95,90,756	22.8
14	छत्तीसगढ़	78,22,902	30.6
15	मध्यप्रदेश	1,53,16,784	21.1
16	गुजरात	8,91,71,774	14.8
17	दादरा नगर हावेली	1,78,564	52.0
18	महाराष्ट्र	1,05,10,213	09.4

19	आन्ध्रप्रदेश	59,18,073	07.0
20	लक्षद्वीप	61,120	94.8
21	अण्डमान निकोबर द्वीप समूह	28,530	07.5
22	केरल	4,84,839	01.45

स्रोत-"www.censusindia.gov.in"[10]

भारत के आदिवासी विविध हिस्सों में बंटे हुए हैं, जैसे- उत्तर पूर्व क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, उत्तर पश्चिम क्षेत्र, पश्चिम दक्षिण क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र, दक्षिण पूर्व क्षेत्र एवं पश्चिम क्षेत्र आदि। भारत के सर्वाधिक आदिवासी आबादी उत्तर पूर्व अंचलों में निवास करती हैं, यथा हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश मिजोराम, असम, नागालैंड एवं त्रिपुरा आदि। दक्षिण भारत के केरल एवं तमिलनाडु राज्यों में सबसे कम आदिवासी निवास करते हैं।

1.3.1. भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकरण

1.उत्तर पूर्वीय क्षेत्र – उत्तर पूर्वीय क्षेत्र हिमालय अंचल से लेकर ब्रह्मपुत्र एवं यमुना नदी के किनारे में आदिवासी निवास करते हैं। जैसे – गुरूंग, लिंबू, लेपचा, आका, डाफला, अबोर, मिरी, मिशमी, सिंगपी, मिकिर, राम, कवारी, गोरो, खासी, नाग, कुकी, लुशाई, चक्मा आदि, मध्य क्षेत्र - मध्य क्षेत्र में संथाली, मुंडा, उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआंग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, करकू, कमार आदि उल्लेखनीय है।

2. पश्चिम क्षेत्र – पश्चिम क्षेत्र में मुख्यतः भील, मीणा, कटकरी आदि आदिवासी समुदाय निवास करते हैं।

[10] www.censusindia.gov.in

3. दक्षिण भारत - दक्षिण भारत में गोदावरी से कन्याकुमारी तक फैले हुए हैं, उनमें चेंचू, कोंड, रेड्डी, राजगोंड, कया, कोलाम, कोटा, करूँबा, बडागा, काड़र, मलायन, मुशुवन, उराली, कनिक्कर आदि उल्लेखनीय हैं।

4. अंडमान निकोबार – भारत सरकार के द्वारा शासित अंडमान निकोबार द्वीप समूहों में भी विविध आदिवासी समुदाय निवास करते हैं, जैसे -निकोबार, अंडमानी, जराव, ओज, सेंट्रीनली आदि।

भारत के आदिवासी समुदाय विविध भौगोलिक क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इसलिए विशेष भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु एवं पर्यावरणीय वातावरण की वजह से विभिन्न उनके रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, पूजा-विधि, भाषा की विभिन्नता एवं सामाजिक संरचनाओं में भिन्नता प्रतीत होती है।

1.3.2. भाषा के आधार पर आदिवासियों का वर्गीकरण

भाषा वह साधन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने मनोभावों संवेदनाओं एवं विचारों को अभिव्यक्त करता है। मानव अपने भाव विचारों को ध्वनि के माध्यम से व्यक्त करता है। मानव जो कुछ सोचता है, या अनुभव करता है, उसे वह भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। भारत में एक ऐसा आदिवासी समुदाय है जो उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक अपने- अपने क्षेत्रों में रह कर अपनी-अपनी भाषा या बोलियों का उन्होंने जिंदा रखा है। दुःखद बात यह है कि आदिवासी अपनी लिपि का विकास न कर पाने कारण उनकी भाषा धीरे-धीरे विलुप्त होने के कगार पर है। अब तक संविधान के 8 वीं अनुसूचि के अंतर्गत केवल बोड़ो एवं संथाली आदिवासी भाषाएँ शामिल हैं। आदिवासी भाषाओं को पांच भागों में विभाजित किया सकता हैं। द्रविड़ परिवार की भाषा, आस्ट्रो एशियाटिक भाषा, चीनी-तिब्बती एवं भारोपीय भाषा परिवार।

1.3.2.1. द्रविड़ परिवार की भाषा

द्रविड़ परिवार की प्रमुख एवं अधिक प्रचलित भाषाएँ तमिल, तेलुगु, मलयालम एवं कन्नड़ है, जिन्हें संविधान की 8 वीं अनुसूची में शामिल किया गया है। भारत के दक्षिण केंद्र में कई आदिवासी समुदाय के द्वारा द्रविड़ परिवार की भाषा बोली जाती है। जैसे – गोंडी, कुई, कोया आदि।

गोंडी – 'गोंडी' भाषा गोंड आदिवासी समुदाय द्वारा बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग बीस लाख है। मुख्यतः यह भाषा मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, ओड़िया एवं महाराष्ट्र में बोली जाती है।

कुई – 'कुई' भाषा कोंध आदिवासी द्वारा बोली जाती है। कुई भाषा बोलने वालों की संख्या लगभग सात लाख है। मुख्यतः छत्तीसगढ, तेलंगना, आंध्रप्रदेश एवं ओड़िया में यह बोली जाती है।

कोया – कोया भाषा साधारणतः गोंडी एवं कुई भाषा का समूह है। कोया बोलने वालों की संख्या सिर्फ तीन लाख है। ये मुख्यतः आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, ओड़िया एवं छत्तीसगढ में निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त मुरिया, मरिया, पेंगो एवं चंचु आदि भाषाएँ अन्य आदिवासी द्वारा बोली जाती है।

1.3.2.2. अस्ट्रो एशियाटिक समूह की भाषा

आस्ट्रिक भाषा परिवार में मुंडारी, खरिया, भूमिज, संथाली, गरो आदि भाषाएँ आती हैं। भारत के मध्य-पूर्व क्षेत्र मध्य प्रदेश, ओड़िया, बंगाल, झारखंड एवं असम में इस प्रकार की भाषा बोली जाती है। तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह के निकोबरी भाषा भी इस परिवार में शामिल है।

1.3.2.3 .चीनी तिब्बती भाषा परिवार

चीनी तिब्बती भाषाएँ मुख्यतः भारत के त्रिपुरा, मणिपुर, दार्जिलिंग, पूर्वी कश्मीर, पंजाब, उत्तर-पूर्वी बंगाल, असम, बोडो तथा सिक्किम के अलावा नेपाली एवं भूटान में भी बोली जाती है । जिनमें मणिपुरी, नगा, मिजो एवं खासी आदिवासी समुदाय द्वारा यह भाषा बोली जाती है ।

1.3.2.4. भारोपीय आर्य भाषा परिवार

भारत के राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में आदिवासी समुदाय द्वारा भारपीय आर्य भाषा बोली जाती है । जैसे- हिंदी, डोगरी, मारवाडी, ढूंढाडी, गुजराती एवं भीली आदि ।

1.4. भारत के आदिवासियों के विविध नृत्य

भारत में आदिवासी अलग- अलग क्षेत्रों में निवास करते हैं । उनमें तरह-तरह की परंपराएँ, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार एवं सांस्कृतिक विशिष्टताएँ विद्यमान हैं । वे विभिन्न पर्व-त्यौहारों, धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर नृत्य करते हैं । आदिवासियों के जीवन में नृत्य-संगीत अभिन्न अंग रहा है । इस अवसर पर दूर-दराज से रिश्तेदार एकत्रित हो कर नृत्य-संगीत जैसे समारोहों में भाग लेते हैं । साधारणः उसमें युवक-युवतियाँ तथा बुजुर्ग हर्ष-उल्लास, मौज-मस्ती से नृत्य प्रदर्शन करते हैं । भारत के प्रत्येक आदिवासी समुदाय की अपनी अलग-अलग विशिष्ट नृत्य-संगीत परंपराएँ हैं । उस नृत्य-संगीत के दौरान तरह-तरह के वाद्ययंत्रों का व्यवहार होता है । ये वाद्ययंत्र बड़े आकर्षक एवं तेज ध्वनि उत्पन्न करते हैं । आदिवासी उन वाद्ययंत्रों को बनाने में अपने पारंपरिक ज्ञान-कौशल एवं कलात्मक अभियोग्यता का सहारा लेता है । हर पर्व-त्यौहारों में भिन्न-भिन्न

वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल होता है, जिनमें ढांका, नगाड़े, ढ़ोलक, टिमकी एवं बांसुरी आदि प्रमुख है। भारत के कुछ आदिवासी समुदायों की नृत्य कलाओं को संक्षिप्त में प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.4.1. दांगिड़ी नृत्य (कुटिया कोंध, ओड़िशा)

"ओड़िया में सबसे ज्यादा कोंध आदिवासी निवास करते हैं। उनमें से कुटिया कोंध एक उप जाति है। दांगिड़ी का मतलब है, अविवाहित युवती। अतः उस नृत्य में अविवाहित लड़के लड़कियाँ भाग लेते हैं। इसलिए इसे दांगिड़ी नृत्य कहा जाता है। साधारणतः कुटिया कोंधों की दांगिड़ी नृत्य चैत माह में होता है। इस नृत्य के दौरान लड़की या लड़का अपने पसंद से जीवन साथी ढूंढते हैं। नृत्य का रहस्य यह है कि लड़के-लड़की गीतों के जरिए एक दूसरे को टक्कर देने की कोशिश करते हैं। अगर कोई लड़का गीतों के जरिए किसी लड़की का दिल जीत लेता है तो उसी को ही अपना जीवन साथी बना लेता है। दांगिड़ी नृत्य में मुख्यतः तुरही, करताल, बंशी एवं ढोल आदि पारंपरिक वाद्ययंत्रों का उपयोग होता है।"[11]

1.4.2. होरी नृत्य (राथोवा आदिवासी, गुजरात)

"राथोवा आदिवासी मुख्यतः गुजरात के छोटा उदयपुर के पहाड़ी अंचल में निवास करते हैं। 'हली' पर्व के बाद छोटी माता के लिए पांच दिन का उपवास रखते हैं। उस दौरान पुरुष एवं महिलाएँ नृत्य प्रदर्शन करते हैं। 'होरी' नृत्य का आशय है कि मानव एवं प्रकृति के बीच अंतर्संबंध का प्रतिबिंब प्रतिफलित होता

[11] Ed. Prof. (Dr.) A.B. Ota, (2014) SCSTRTI NEWSLETTER, VOLUME: IV, Bhubaneswar, पृ.सं. 2

है, उस नृत्य में शहनाई, रामढोल एवं थाली आदि वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल होता है ।"[12]

1.4.3. बागद्ववाल नृत्य (भूटिया आदिवासी, उत्तराखंड)

"हिमालय पर्वत के नीचे बर्फीले एवं अंचल में रहने वाले आदिवासियों को 'भूटिया आदिवासी' कहते हैं । उनका अपना पांरपरिक नृत्य एवं संगीत है । कहा जाता है कि ऊगोदी गाँव में एक जितु सिंह नामक राजा हुआ करता था । एक दिन वह जंगल के देवता से अनुचित व्यवहार कर देता है, जिसकी वजह से देवता राजा को मार देता है । लिहाजा राजा की आत्मा गुस्सा हो कर जीवंत मनुष्य पर आक्रमण करती है और वह लोगों को मारने लगता था। अतः 'भूटिया आदिवासी' राजा की आत्मा को शांत करने हेतु वहाँ पर पूजा विधि करके 'बागद्ववाल' नृत्य प्रदर्शन करते हैं । वे इस नृत्य के दौरान पांरपरिक वेश-भूषा एवं गहने पहन कर नृत्य प्रदर्शन करते हैं । नृत्य में मुख्यतः दामु, ढोल आदि वाद्ययंत्रों का व्यवहार होता है ।"[13]

1.4.4. ब्रिली नृत्य (धारूवा आदिवासी, ओड़िशा)

"ओड़िया में धारूवा आदिवासी सबसे कम हैं । ये लोग करापुट जिले में निवास करते हैं । त्योहार के दौरान वे अपनी पांरपरिक वेश-भूषा पहन कर नृत्य प्रदर्शन करते हैं । धारूवा आदिवासियों का मुख्य नृत्य 'ब्रिल' है । यह नृत्य फसल कटाई के बाद जनवरी एवं फरवरी के महीने में होता है । साधारणतः इस नृत्य में

[12] Ed. Prof. (Dr.) A.B. Ota, (2014) SCSTRTI NEWSLETTER, VOLUME: IV, Bhubaneswar, पृ.सं. 2
[13] वही, पृ.सं-3

महिलाएँ एवं पुरुष भाग लेते हैं। किंतु मुख्यतः युवक आधिक मात्रा में शामिल होते हैं। इस नृत्य में तुरही, बंशी एवं ढोल आदि वाद्ययंत्र का प्रयोग किया जाता है।"[14]

1.4.5. कुइनरी लोस्व नृत्य (खरिया आदिवासी, झारखंड)

"खरिया आदिवासी झारखंड के रांची, गुमला, सिंहभूमी, हजारी बाग आदि जिलों में निवास करते हैं। साहराई पर्व के दौरान कुइनारी लोस्व नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। इस नृत्य को अन्य भाषा में 'बंडइ लेहरांग लोस्वा' भी कहा जाता है। यहाँ कुइनरी का मतलब है, 'कार्तिक माह'। कुइनरी लोस्व नृत्य में केवल अविवाहित महिलाएँ ही भाग ले सकती हैं। इस नृत्य को लगभग एक हफ्ते तक मनाया जाता है।"[15]

1.4.6. पाग नृत्य (बाइग जनजाति, मध्यप्रदेश)

"मध्यप्रदेश के माँडल एवं बालघाट के पहाड़ी इलाकों में बाइग जनजाति निवास करती हैं। उनके जीवन में नृत्य एवं संगीत एक अभिन्न अंग रहा है। 'पाग पर्व' के दौरान महिलाएँ लकड़ी की मुखौटा पहन कर नृत्य प्रदर्शन करती हैं। उनके मुख्य वाद्ययंत्र मदाल, टिमकी एवं बंशी आदि उल्लेखनीय है।"[16]

[14] Ed. Prof. (Dr.) A.B. Ota, (2014) SCSTRTI NEWSLETTER, VOLUME: IV, Bhubaneswar, पृ.सं. 3
[15] वही
[16] वही

1.5. आदिवासी विमर्श की अवधारणा

हिंदी साहित्य में विगत कई दशकों से स्त्री एवं दलित विमर्श को स्थान दिया जा रहा है । हिंदी साहित्य में नए विमर्श के रूप में आदिवासी विमर्श का प्रारंभ नौवें दशक में हुआ, जो लंबे समय से ही हाशिये पर रहा है । उनको जंगली, राक्षस, असभ्य कह कर साहित्य में उपेक्षित रखा गया । किंतु आज आदिवासी विमर्श साहित्य के क्षेत्र में दस्तक दे रहा है, और अपनी आवाज़ को बुलंद कर रहा है । जब हिंदी साहित्य में दलित विमर्श के रूप उभर रहा था । उस दौरान आदिवासियों की आवाज़ दलित मंच पर ठीक से नहीं सुनाई दे रही थी । लिहाजा दलित विमर्श से अलग हो कर आदिवासियों को अपनी एक अलग राह ढूँढ़नी पड़ी है । जिसके माध्यम से वह अपने सामाजिक प्रतिमान एवं जीवन संघर्ष को यथार्थ रूप में हिंदी साहित्य के माध्यम से प्रकट करने की प्रयास कर रहा है । आदिवासी विमर्श का दलित विमर्श से अलग होने की एक मुख्य वजह भी रही है कि दलित अपने मंच से सिर्फ अपने समुदाय के अधिकार एवं सामाजिक समानता की बात करते है । इसलिए रमेश चंद मीणा अपने लेख में लिखते हैं –

> *"भौगोलिक दृष्टि से जंगलवासी का रिस्ता किसी न किसी तरह से जमीन से जुड़ा रहा है । इस तरह एक आदिवासी के पास अपनी जमीन होती ही है पर दलित को अपनी जमीन का मालिकाना हक ही नहीं होने देने से व भूमिहीन होकर श्रम से जुड़े रहे हैं । इसलिए दलित की लड़ाई जमीन की न होकर सामाजिक सम्मान की अधिक रही है । जबकि आदिवासी हमेशा से जमीन को लेकर ही संघर्ष करता रहा है । आदिवासी और दलित की लड़ाई के स्पष्टतः अलग-अलग जमीन रूप*

रहे हैं। इसलिए एक दलित सम्मान पाने के लिए ब्राह्मणवाद का लाख विरोधी होते हुए घूम फिर कर उनकी शरण में पहुँचता रहा है।"[17]

किंतु एक बात तो स्पष्ट है कि दलित एवं आदिवासी दोनों ही लंबे समय से तथाकथित प्रगतिशील सभ्य समाज द्वारा शोषित रहे हैं, और दोनों ही अपनी-अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से जूझते आ रहे हैं। मगर दलित एवं आदिवासी विमर्श एक नहीं हो सकता है। क्योंकि जहाँ पर एक तरफ दलित सामाजिक अन्याय, अत्याचार एवं ब्राह्मणवाद से लड़ाई लड़ रहा है। वहीं आदिवासी दीकूओं (बाहरी लोगों) से अपनी जल, जमीन, जंगल के लिए लड़ रहा है।

संविधान में आदिवासी शब्द के बदले अनुसूचित जनजाति शब्द का उल्लेख किया गया है। यह शब्द कई संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में चर्चा का विषय रहा है। इसके संदर्भ में रामदयाल मुंड जी लिखते हैं –

"जब यह पता है कि कुछ लोग उसे गिरिजन या वनवासी कहने लगे हैं तो लगता है उनसे यह सम्मान जानबूझ कर छीना जा रहा है। और उन्हें वनमानुष बनाया जा रहा है।"[18]

अनुसूचित जनजाति की जगह आदिवासी शब्द को स्थान दिया चाहिए ताकि उनके सामाजिक संरचना, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप की यथार्थ पहचान हो सके। जैसे-जैसे आदिवासी समाज में शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है, वैसे-वैसे उनके ऊपर शहरी जीवन एवं संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता जा रहा है। आदिवासी शहर में जाकरगैर आदिवासी संगठनों एवं संस्थाओं (चाहे राजनीतिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक हो) में शामिल होते है। उन संस्थाओं द्वारा आदिवासियों को सेवा के नाम पर इस्तेमाल किया

[17] रमेश चंद मीणा, (2013) आदिवासी विमर्श, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं- 23
[18] गुलाब चंद पांचल, सं. रमेश चंद मीणा (2013) आदिवासी विमर्श, पृ.सं - 27

जाता है। आदिवासी जिंदगी भर मानसिक गुलामी का दंश झेलने को मजबूर हो जाता है। इस प्रकार के संस्थानों का मुख्य उद्देश्य सिर्फ आदिवासियों का शोषण करना है। आदिवासियों को राजनीतिक क्षेत्र में उन्हें सिंहासन पर सिर्फ मुखौटा बना कर बैठाया जाता है। वह भी आसन पर बैठ कर अपने अपको राजा समझने लगता है। किंतु अपना वर्चस्व कायम रखने वाले कोई ओर होते हैं। उसको नाम मात्र के वास्ते सिंहासन पर बैठाया जाता है। गैर आदिवासी द्वारा बनाई गई नीति-नियम का हूबहू स्वीकार करना पड़ता है, नहीं तो उसे सिंहासन से हटा दिया जाता है। लिहाजा वह अपनी स्वर्थपूर्ति के लिए जिंदगी भर मानसिक गुलाम बन कर रह जाता है।

आदिवासी क्षेत्रों में धीरे-धीरे धार्मिक प्रचार-प्रसार हो रहा है, और उनके ग्राम देवता के स्थान पर मंदिर-चर्चों की स्थापना की जा रहा है, जिससे आदिवासी अपने परंपरागत रीति-रिवाजों से दूर होते जा रहे हैं, और वे अपनी पांरपरिक धार्मिक मान्यताओं को छोड़कर हिंदू एवं ईसाई मिशनरियों से प्रभावित हो कर बड़ी तेजी से धर्मांतरण होते जा रहे हैं। हिंदू - इसाई धार्मिक उत्सवों में करोड़ो-करोड़ों रुपए खर्च किया जा रहे है, जिसकी वजह से समाज एक नए आर्थिक संकट से जूझ रहा है, जिससे उनके समाज में आर्थिक संकट का एक उदाहरण है। इसलिए आदिवासी लेखक हिंदी साहित्य के माध्यम से इस प्रकार के अहम मुद्दें उठा रहे हैं। इसके संदर्भ में डॉ. श्रवण कुमार मीणा लिखते हैं –

> *"वस्तुतः भूमंडलीकरण और बाजार ने आदिवासियों की अस्मिता, अस्तित्व, भाईचारे व आजादी को चुनौती दी है, उनका दायित्वबोध प्रतिरोध स्वरूप साहित्य लेखन में फूटने लगा। उनकी नस्ले आधारित*

संस्कृति, भाषा और रहन-सहन की शैली को बचाये रखने के लिए उठ खड़ा हुआ है। उसने अपनी कलम की ताकत दिखा दी है।"[19]

शहरीकरण एवं औद्योगिक प्रगति ने आदिवासियों के शोषण को बढ़ा दिया है। यातायात की सुविधाओं के कारण शहर के साहूकारों एवं ठेकेदार आदिवासियों के अंचल में प्रवेश कर रहे हैं। उनके कच्चे माल सस्ते में ले जाते हैं, और शहर में जाकरमुनाफे दाम पर बेचते हैं। निरीह आदिवासी कड़ी मेहनत करने के बावजूद भी दो वक्त की रोटी के लिए विवश होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में आदिवासी बच्चों की पढ़ाई केवल स्वप्न बन कर रह जाती है। शहर के आस-पास रहने वाले आदिवासियों को गैर आदिवासी ठेकेदारों ने उनकी जमीनों को कम दामों में खरीद कर उन्हें भूमिहीन बना दिया है। उन्हीं के जमीनों पर उनको ही मजदूर बना दिया गया है, तथा वे बड़े-बड़े बंगले बना रहे हैं। केवल यह ही नहीं उन्हें कम दैनिक मजूरी दे कर काम करवाया जाता है, और उनकी महिलाओं को यौन शोषण करके उन्हें अमानवीय सलूक किया जाता है ऐसी स्थिति में उनकी पढ़ाई तो दूर की बात है। उनको रहने के लिए आवास की व्यवस्था भी नहीं करवाई जाता है।

इन सारी समस्याओं को दृष्टिगोचर करते हुए आदिवासी साहित्यकारों ने अपना हक और अधिकरों की माँग कर रहे हैं। इसलिए आदिवासी लेखक महादेव टोप्प जी लिखते हैं –

"आदिवासी साहित्य इतिहास में समाज में अपनी अस्तित्व रक्षा के अतिरिक्त यह पूछ रहा कि साहित्य में उसकी मुक्ति का संघर्ष कहाँ हैं ? या साहित्य के दर्पण में उसका चेहरा कहाँ और कैसे है ? "[20]

[19] डॉ. श्रवण कुमार मीणा, सं. रमेश चंद मीणा (2013) आदिवासी विमर्श, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं - 41

[20] महादेव टोप्प, (2018) सभ्यों के बीच आदिवासी, अनुज्ञा बुक्स, पृ.सं - 73

सच तो यह है कि तथाकथित सभ्य समाज कहे जाने वाले केवल अपने समाज की अभिजनवर्गीय अपनी सामाजिक रीति-रिवाजों एवं संस्कारों को ही साहित्य में देखते हैं । वे साहित्य के दर्पण के माध्यम से दूसरों का चेहरा देखना भी नहीं चाहते हैं । किंतु आज आदिवासी स्वयं अपनी मुक्ति का मार्ग एवं अपनी जीवन की यथार्थ तकलिफों को साहित्य के विविध विधाओं के माध्यम से इजहार कर रहा है ।

जब आदिवासी विमर्श की बात की जाती है तो आदिवासी जीवन की कसौटी पर उनकी आदिम परंपरा, संस्कृति, जीवन दर्शन, लोक साहित्य, विकास वनाम विस्थापन एवं अस्मिता का संकट आदि शामिल है । आदिवासी समुदाय सदियों से अपनी सामाजिक सांस्कृतिक, धरोहर में जीते आए हैं । किंतु धीरे-धीरे आदिवासी क्षेत्रों में औपनिवेशिक घुसपौठियों वजह से उनकी जल, जंगल, जमीन एवं सांस्कृति विरासत नष्ट हो रही है । लिहाजा उनकी सामाजिक, राजनीतिक, सामूदायिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता संकट की स्थिति में आ गई है ।

आदिवासी विमर्श हिंदी साहित्य के माध्यम से समाज में भ्रातृत्व भाव उत्पन्न करता है । तथा अपने पुरखों के इतिहास का दस्तावेजीकरण कर आनेवाला पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखता है । जिससे वे अपने सामाजिक सांस्कृति, रीति-रिवाज एवं जीवन पद्धतियों से रूबरू हो सके । आदिवासी अपनी खोई हुए सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता को आदिवासी विमर्श एवं इतिहास पुनःलेखन के माध्यम से साहित्य एवं इतिहास के पन्नों पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है ।

आदिवासी समाज में सदियों ही से समानता की प्रवृत्ति रही है । लेकिन मुख्य धारा की राजनीति के कारण उनमें ये सारी प्रवृत्तियाँ नष्ट हो रही है, और उनके समाज में बड़ी तीव्रता से राजनीतिकरण हो रहा है, जिससे उनमें विरोध, हिंसा एवं ईर्ष्या आदि का भाव जन्म ले रहा है । आज के मुख्य

राजनीतिक धारा में सियासी रोटी सेकने के चक्कर में आदिवासियों को नायक बना कर उनके मैदान में ही राजनीतिक खेल खेला जा रहे हैं। कुछ आदिवासी अपना आत्म सम्मान खो कर अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु अपने समाज को ही बेच रहे हैं, और जिंदगी भर के लिए मानसिक गुलाम बन कर रह जाते हैं। जिसके कारण उनके नीति-नियमों के खिलाफ आवाज़ नहीं उठा सकते हैं । राजनीतिक क्षेत्र में भी ऐसे व्यक्ति को स्थान मिलता है जो अपने मुख को ताला बंद करके रखता है।

आदिवासी समाज की न्याय व्यवस्था तथाकथित मुख्यधारा से पूर्णतया भिन्न है। यदि उनके समाज में कोई अपराध करता है तो उन्हें कोर्ट-कचहरी में जाने की जरूरत नहीं है। न्यायाधीश बिना पैसों के अपराधी को उचित दंड देता है । यही आदिवासी जीवन दर्शन है । उनके दर्शन में समानता, सामूहिकता है। लिहाजा आदिवासी न्याय व्यवस्था को अवलोकन करने की जरूरत है । गैर आदिवासी द्वारा आदिवासियों को नकारात्मक तस्वीर पेश जाता है। जैसे कि उन्हें भूखा-नगां, एवं हाशिए का समाज के रूप में दर्शाया गया है, लेकिन आज आदिवासी बुद्धिजीवि गैर आदिवासी लेखन को चुनौती दे रहे हैं, और अपने एक आदिवासी दर्शन की जमीन तैयार कर रहे हैं। भारत इतिहास के पान्नों में आदिवासियों को स्थान नहीं दिया गया है, सच तो यह है कि अंग्रेजों के खिलाफ सबसे पहले आदिवासियों ने लड़ाई लड़ी थी । गैर आदिवासी इतिहासकारों ने जानबूज कर उन्हें नजरअंदाज किया है। किंतु आज आदिवासी अपना इतिहास खुद लिख रहा है, डॉ. बन्ना राम मीना लिखते हैं –

> *"आज आदिवासी देखा जाए तो देश के तमाम आदिवासी रचनाकार दुनिया को बचाने वाला साहित्य रच रहे हैं। उनकी चिंता के केंद्र में पूरी सृष्टि, समष्टि और प्रकृति है। आदिवासियों की आदिवासियत और*

आदिवासी दर्शन आदिवासी लेखकों की मूल थीम है, जिस तरह से बौद्धिक संसार में दलित साहित्य और स्त्री साहित्य ने अपनी जगह बनायी है, ठीक उसी तरह पिछले कुछ वर्षों से आदिवासी साहित्य को भी स्वीकर करने की आवटें साहित्य जगत में सुनी जा सकती है।"[21]

आदिवासी विमर्श को आदिवासी एवं गैर आदिवासी दोनों लेखकों द्वारा लिखा जा रहा है। ऐसी लेखनी में स्वानुभूति एवं सहानुभूति का भाव उभर कर आती है। जब आदिवासी खुद अपना साहित्य लिखता है। वह भोगे हुए जीवन संघर्षों को साहित्य में लिपिबद्ध करता है। इसलिए उनके साहित्य में नैसर्गिक जीवन दर्शन मिलता है। किंतु गैर आदिवासी साहित्य लेखन में नैसर्गिक जीवन दर्शन नहीं मिलती हैं। गैर आदिवासी कहीं न कहीं पूर्वाग्रह से ग्रसित हो कर लिखते हैं। वे केवल सहानुभूति से लिखते हैं। आज के आदिवासी लेखक निर्मला पुत्तुल, वंदना टेटे, महादेव टोप्पो, अनुज लुगुनु, वाहरू सोनेवणे, जंसिता केरकेट्टा, गंगा सहाय मीणा, हरिराम मीणा, केदार प्रसाद मीणा आदि प्रतिष्टित लेखक गण अपनी कलम को हल बना कर कागज की जमीन पर खेती कर रहे हैं।

अगर भारत की प्राचीन संस्कृति को बचाना है, तो आदिवासियों को विस्थापन से रोकना होगा तथा उनके प्राकृतिक संसाधनों, संस्कृति एवं भाषा को भी बचाना होगा, नहीं तो भारत की प्राचीन संस्कृति नष्ट हो जाएगी। आज प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण वह अपनी मूल संस्कृति की पहचान खोता जा रहा है और नई उभरती हुई उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में फँसता जा रहा है। इतिहास की ओर गौर करने से यह प्रतीत होता है कि आदिवासियों का परिवर्तन सकारात्मक रूप से कम और नकारात्मक रूप से ज्यादा हुआ है। इसका मूल कारण भूमंडलीकरण या शहरीकरण है। नकारात्मक रूप से उनकी भाषा,

[21] डॉ. बन्ना राम मीना, (2018) आदिवासी नामाः आदिवासी साहित्य और परंपरा को खोज, साहित्य संचय पृ.सं. 76

नृत्य, संगीत एवं पारंपरिक ज्ञान कौशल शरीखी आदिवासिओं की धरोहरों का सभी स्तरों पर ह्रास हो रहा है, एक उदाहरण के तौर पर उनके समाज में दहेज प्रथा नई बड़ी समस्या के रूप में उभरने लगी है, जो कि मुख्यधारा प्रभाव का परिणाम है । पुराने जमाने में तो ये समस्याएँ बिल्कुल नहीं थी । लेकिन आज उसका असर आदिवासी समाज में दिखाई दे रहा है । इसके जिम्मेदार कौन हैं? मेरे ख्याल से इसकी जिम्मेदारी उन शिक्षित आदिवासी वर्ग की है, जो सरकारी लाभ लेकर आगे बढ़ गये हैं और अपने आप को उस अभिजात वर्ग या सभ्य समाज से जोड़ रहे हैं । जिसका प्रभाव गरीब आदिवासी पर ज्यादा पड़ता है । कई आदिवासी ऐसे भी है जो आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए भी वे अपनी पुरानी परंपरा को अपना रहे हैं । आज ऐसी भी घटनाएँ सामने आ रही है, जैसे- अपनी बेटी की शादी के लिए दूसरों से ऋण लेता है और उसी ऋण को चुकाने में उसे वर्षों लग जाते हैं, यहाँ तक कि उस कर्ज को चुकाने के लिए उन्हें अपनी जमीन तक बेचनी पड़ जाती है, फिर उसे रोजगार के लिए शहर की ओर पलायन करने को मजबूर होना पड़ता है । इस तरह से आदिवासियों की अस्मिता एवं अस्तित्व खतरे में है । आदिवासियों के परंपरागत पुश्तैनी ज्ञान, उनके मिथक, प्रतीक, बिंब, संकेत, मान्यताएँ एवं देवी- देवताओं के विश्वास मौखिक रूप से विद्यमान अन्य पंरपरागत ज्ञान तथा आदिवासी उनके समाज के लौकिक-अलौकिक एवं दार्शनिक तत्वों को शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए, जिससे उनकी भावी पीढ़ी अपने पुश्तैनी ज्ञान से अवगत हो सके ।

आदिवासी समाज में मनुष्य के उत्थान-पतन एवं प्राचीनतम लोक संस्कृति उनके लोक कहानियों, लोक कथाओं एवं लोक गीतों में उल्लेख है । लेकिन आज हिंदूत्ववादी तथा मिशनरियों के दुष्प्रभाव से आदिवासी समाज के रीति-रिवाज एवं उनके परंपरागत गीत, नृत्य एवं सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियाकलाएँ नष्ट हो गयी हैं । इसलिए उनके अस्तित्व एवं अस्मिता खतरे में है ।

आदिवासियों के सामने आज दो तरह की चुनौतियाँ है, पहली तो आदिवासियों को विस्थापन से रोकना तथा उनके आवास एवं संसाधनों को वापस मिलने की व्यवस्था हो। तथा सरकार द्वारा बनाये गये नीति- नियमों को सही रूप से कार्यान्वित किया जाये।

1.6. निष्कर्ष

इस अध्याय में आदिवासियों का विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया किया गया । आदिवासियों का परिचय के अंतर्गत 'आदिवासी' शब्द की अवधारणा समझने की कोशिश की गई है । विभिन्न परिभाषाओं से स्पष्ट प्रतीत होता है कि नृवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रियों ने आदिवासियों को कई नामों से अभिहित किया है, यथा - अनुसूचित जनजाति, वनवासी, जंगली, गिरिजन, देशज, राक्षस, असभ्य, एबोरिजनल, ट्राइब्स आदि।

आदिवासियों का परिचय देते हुए उनकी जीवन शैली, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा पूजा-विधि एवं धार्मिक मान्यताओं का उजागर किया है, इससे यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि उनमें सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं, और उन आदिवासियों में भी परिवर्तन का स्वरूप दिखाई पड़ता है।

भारत के आदिवासी अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करते हैं तथा उन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है, यथा- संथाल, मुंडा, कोंड, कोंध, हो, सवरा, भील, बिरहर, गोंड आदि । इन सारे आदिवासियों की जीवन शैली एवं सामाजिक सरोकार में सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं । किंतु उनमें अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती है। ये आदिवासी बाहर के सभ्य समाज से संपर्क में आने पर उनकी प्राचीन मूल संस्कृति, भाषा एवं परंपराओं में परिवर्तन का स्वरूप दिखाई पड़ता है।

आज हिंदी साहित्य जगत में विगत कई दशकों से स्त्री एवं दलित विमर्श को स्थान दिया जा रहा है। हिंदी साहित्य में नए विमर्श के रूप में आदिवासी विमर्श का प्रारंभ नौवें दशक में हुआ, जो लंबे समय से ही हाशिये पर रहा है। आदिवासी लेखक स्वयं अपनी आवाज़ को बुलंद करके दीकुओं से जल, जंगल, जंगल के लिए लड़ रहा है। जब आदिवासी विमर्श की बात आती है तो आदिवासियों की आदिम परंपरा, संस्कृति, जीवन दर्शन, लोक साहित्य, विकास बनाम विस्थापन एवं अस्मिता का संकट आदि शामिल हैं। आदिवासी समाज में सदियों से स्वतंत्रता, समानता, स्वच्छंदता की प्रवृत्ति रही है। लेकिन मुख्य धारा की राजनीति के कारण उनमें ये सारी प्रवृत्तियाँ नष्ट हो रही हैं, और उनके समाज में बड़ी तीव्रता से राजनीतिकरण हो रहा है, जिससे उनमें विरोध, हिंसा एवं ईर्ष्या आदि का भाव जन्म ले रहा है।

*****

दूसरा अध्याय

कोंध आदिवासियों का सामान्य परिचय

ओड़िया भारत के पूर्वी तट पर स्थित है। प्राचीन काल में इसे कलिंग एवं उत्कल नाम से जाना जाता था। ओड़िया का भौगोलिक क्षेत्र 1,55,707 वर्ग कि.मी. है। इसके उत्तर में झारखंड, उत्तर पूर्व में पश्चिम बंगाल, दक्षिण में आंध्रप्रदेश और पश्चिम में छत्तीसगढ़ हैं। यहाँ के इतिहास एवं सांस्कृतिक परंपराएँ प्राचीन हैं।

2.1. ओड़िया के आदिवासियों का सामान्य परिचय

ओड़िया भारत का एक ऐसा राज्य है, जहाँ पर सबसे अधिक आदिवासी निवास करते हैं। भौगोलिक दृष्टि से ओड़िया के आदिवासी, दक्षिण ओड़िया एवं उत्तर ओड़िया के कई हिस्सों में पाए जाते हैं। दक्षिण ओड़िया के रायगडा, कोरापूट, नंबरगंपुर, मल्कानगिरी, कलाहंडी, कंधमाल जिले में कोंध, सवरा, कोया, किसान, बोंडो, गदबा एवं परजा आदि आदिवासी निवास करते हैं। उत्तर ओड़िया में मयूरभंज एवं क्योंझर जिले में संथाल, मुंडा, उरांव, किसान, कोल्ह, भुंइया एवं जुवांग आदि आदिवासी निवास करते हैं। इन सबकी अपनी समृद्ध परंपराएँ, रीति-रिवाज एवं कलात्मक विरासत हैं। यहाँ के आदिवासी समुदाय में पृथक्-पृथक् परंपराएँ, संस्कृति, चित्र कला, नृत्य कला, संगीत कला एवं अलग-अलग भाषाएँ विद्यमान हैं। उनकी सांस्कृतिक धरोहर, धार्मिक मान्यताएँ एवं तरह-तरह की पूजा पद्धतियों में भिन्नता पाई जाती है। जैसे- द्रविड़ परिवार की भाषाएँ, भारोपीय परिवार की भाषाएँ एवं आस्ट्रिक परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। ओड़िया के अधिकांश आदिवासी आज भी प्राचीन पद्धतियों का अवलोकन करके जीवन निर्वाह करते हैं। किंतु कुछ आदिवासी समुदाय में आंशिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है।

भारत के नृवैज्ञानिकों के अनुसार ओड़िया में सबसे ज्यादा आदिवासी निवास करते हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी कुल जन संख्या 95,90,756 है, जो 22.85 प्रतिशत है। ओड़िया के विभिन्न आदिवासी समुदायों के नामों सहित उनकी आबादी नीचे प्रस्तुत है।

सारणी - 2

क्र.सं	आदिवासियों का नाम	पुरुष	महिला	कुल जन संख्या
1	भगता	4,323	4,490	8,813
2	बैगा	173	165	338
3	बंजारा, बंजारी	9,126	9,131	18,257
4	बाथुड़ी	1,06,515	1,10,880	2,17,395
5	भोथाड़ा, धोतड़ा	2,2,226	2,28,505	4,50,771
6	भुया, भयां	1,51,479	1,54,650	3,06,129
7	भुमिया	61,360	64,617	1,25,977
8	भूमिज	1,41,270	1,42,639	2,83,909
9	भूंझिया	6,139	6,211	12, 350
10	बिंझाल	68,810	68,230	1,37,040
11	बिंझिया, बिंझाओ	5,787	5,632	11,419
12	बिरहोर	289	307	596
13	बोंड पोराजा	5,669	6,562	12,231
14	चेंचु	6	7	13
15	दाल	12,626	12,972	25,598
16	देसिया भूमिज	201	203	404
17	धारुआ	8,875	9,276	18,151
18	दिदाई	4,175	4,715	8,890
19	गड़बा	40,953	43,736	84,689

क्र.सं	आदिवासियों का नाम	पुरुष	महिला	कुल जन संख्या
20	गंड़िया	884	970	1,854
21	घारा	99	96	195
22	गोंड, गोंडा	4,38,624	4,49,957	8,88,581
23	हो	39,977	40,631	80,608
24	होल्वा	14,006	14,143	28,149
25	जाजापु	7,231	7,659	1,890
26	जुआंग	23,093	24,002	47,095
27	कंड़ा गोउड़	13,318	13,085	26,403
28	कवारा	2,627	2,598	5,225
29	खरिया, खरियांन	1,09,817	1,13,027	2,22,844
30	खरवार	1,122	1,143	2,265
31	खोंड, कोंध,कोंधा, सिता कोंध, कुटिया कोंध, नांगुली कोंध, डंगरिया कोंध	7,90,559	8,36,927	16,27,486
32	किसान	1,65,079	1,66,510	3,31,589
33	कोल	2,028	2,030	4,058
34	कोलह लोहरास	2,028	2,030	4,058
35	कोल्ह	4,707	4,851	9,558
36	कोलि, माल्हर	3,10,212	3,14,797	6,25,009
37	कोंडा दोरा	3,268	3,155	6,423
38	कोरा	10,222	10,580	20,802
39	कोरूवा	27,173	27,235	54,408
40	कोटिया	250	249	499
41	कोया	3,466	3,766	7,232
42	कुलिस	71,014	76,123	1,47,137
43	लोधा	6,854	6,835	13,689
44	महालि	1,106	1,137	2,243

क्र.सं	आदिवासियों का नाम	पुरुष	महिला	कुल जन संख्या
45	मडिया	4,860	4,925	9,785
46	माँकिडी	9,182	9,443	18,625
47	माँकिरडिया	12	19	31
48	मात्य	1,144	1,078	2,222
49	मिर्धास	15,149	15,020	30,169
50	मुंडा, मुंडा लोहारिस, मुंडा महारिस	37,757	38,183	5,58,691
51	मुंडारी	2,79,211	2,79,480	25,655
52	ओमानात्या	14,204	14,532	28,736
53	उराँव	1,77,457	1,80,655	3,58,112
54	पारेंगा	4,532	4,913	9,445
55	परोजा	1,80,122	1,94,506	3,74,628
56	पेंटिया	4,870	5,133	10,003
57	राजुअर	1,753	1,765	3,518
58	संथाल	4,45,700	4,49,064	8,94,764
59	शवरा, सबर, शौरा, शहरा	2,64,364	2,70,387	5,34,751
60	शबार, लोधा	2,55,184	2,61,218	5,16,402
61	शौंति	55,759	57,044	1,12,802
62	थारूआ	4, 721	4,730	9,451
	अनिर्दिष्ट जाति	62,248	63,565	1,25,813

स्रोतः- "Demographic profile of Scheduled Tribes in Odisha."[22]

[22] Ed. Prof.(Dr.) A.B. Ota, S.C. Mohanty, (2015) Demographic profile of Scheduled Tribes in Odisha. P. 77

2.2. कोंध आदिवासियों का परिचय

ओड़िया में सबसे ज्यादा आदिवासी निवास करते हैं। उनमें से कोंध समुदाय की आबादी अधिक है। कोंध आदिवासियों का सामान्य परिचय देते हुए कोंध शब्द की व्यत्पत्ति एवं उनका वर्गीकरण किया गया है । तथा उनके रहन-सहन, सामाजिक व्यवस्था, कलाएँ एवं भाषा पर चर्चा किया गया है।

2.2.1. 'कोंध' शब्द की व्युत्पत्ति

'कोंध' की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में भिन्न-भिन्न मत हैं। निहार रंजन पटनायक के पुस्तक *'History and Culture of Khond Tribes' में 'कोंध' शब्द की व्युत्पति के बारे में उल्लेख मिलता है।*

> *"In telugu the Khonds are called 'Kodu Vandlu,' in Oriya 'Kondho loko' and the khonds call themselves 'Kui' which is 'Kuinga' in the plural form. The 'Khond,' as Macpherson has suggested, is derived from the Telugu word 'Konda,' He writes thus, the Hindu name for this people which we have adopted, Khond,' in the plural Khondoolo,' a 'hill' means mountaineer, from the Telugu word signifying a hill."*[23]

इस परिभाषा से प्रतीत होता है कि कोंध आदिवासी आंध्र प्रदेश के निकटवर्ती पहाड़ों में निवास करता है, तथा यहाँ तक कि उनकी भाषा, सामाजिक संरचनाएँ एवं रीति-रिवाज तेलुगु संस्कृति से मिलती-जुलती हैं। तेलुगु भाषा में कोंडा का

[23]Nihar Ranjan Pataik, (1991) History and Culture of Khond tribes, p. 9

अर्थ 'पहाड़' है । इसलिए 'कोंडा' से 'डा' विलुप्त हो 'कोंध' लिखा गया होगा, जो पहाड़ों में रहते हैं, उन्हें 'कोंडा वाल्लु' कहा जाता है । ओडिया भाषा में एक और शब्द है, 'खंडा' जिसका अर्थ तलवार है, जिसका शिकार हेतु प्रयोग किया जाता है । यह भी माना जा सकता है कि कोंध आदिवासियों के जीवन में शिकर एक अभिन्न अंग रहा है । वे शिकार करने हेतु तलवार, धनुष एवं तीर का प्रयोग करते हैं । इसलिए ओडिया भाषा में 'खंडा' से 'कोंध' शब्द की व्युत्पति हुई होगी । 'कोंध' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई होगी और कैसे प्रयोग किया गया । इसका ठोस प्रमाण अब तक उपलब्ध नहीं है । लेकिन कुछ हद तक Macpherson की परिभाषा को ही स्वीकार किया जा सकता है ।

2.2.2. कोंध आदिवासियों का वर्गीकरण

ओड़िया के आदिवासी समुदायों की संख्या 62 है, इनमें से कोंध आदिवासियों की आबादी अधिक है । वे दक्षिण ओड़िया के कोंध माल, रायगड़ा, कलाहांडी, कोरापुट, मालकनगिरि एवं गजपति आदि जिलों में निवास करते हैं । कोंध आदिवासियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- जैसे कुटिया कोंध, डंगरिया कोंध, देसिया कोंध आदि । कोंधों के बारे में एक लोक कथा प्रचलित है । उनका मानना है कि कोंध तीन भाई थे । एक दिन किसी वजह से तीनों भाइयों के बीच झगड़ा हुआ । इसलिए वे परिवार से अलग-अलग हो गये । पहला भाई जो है, जंगल (डंगर) की तरफ चला गया और वहीं पर वह बस गया, इसलिए उसे डंगरिया कोंध कहा गया । दूसरा जो है, वहीं पर झोंपड़ी (कुटिया) बना कर रह गया । उसे कुटिया कोंध कहा गया । तीसरा जो है समतल अंचल में बस गया । इसलिए उसे देसिया कोंध कहा गया । कोंध आदिवासी सुंदर, बीहड़

एवं अगम्य प्रदेशों में निवास करते आये हैं । इन कोंध समुदाय में उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि सामान्य मान्यताएँ हैं ।

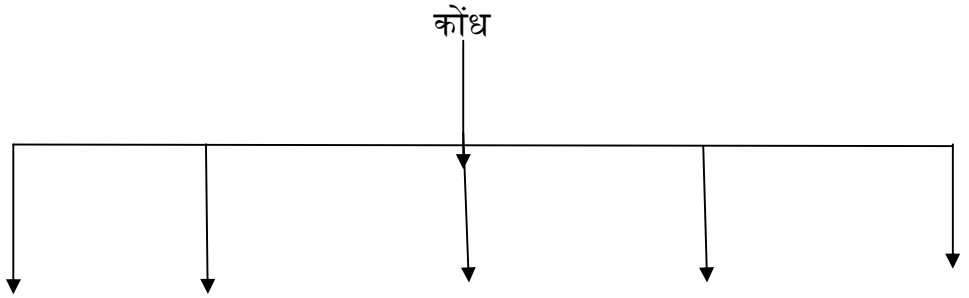

कुटिया कोंध डंगरिया कोंध देसिया कोंध महियाह कोंध कुई कोंध

इनमें से कुटिया कोंध एवं डंगरिया कोंध की आबादी अधिक है । इसलिए दो समूहों की सामाजिक संरचना, संस्कृति, रीति-रिवाज एवं भाषा काफी मिलती-जुलती है । इन दोनों समुदायों का संक्षिप्त परिचय आगे प्रस्तुत है ।

2.2.2.1. कुटिया कोंध

कुटिया का मतलब है जो पहाड़ के नीचे मैदानी अंचल में निवास करते हैं, उसे 'कुटिया कोंध' कहा जाता है । कुटिया कोंध साधारणतः दक्षिण ओड़िया के रायगडा, कोंधमाल, कोरापुट, मालकानगिरि एवं कलाहांडी जिले में निवास करते हैं । कुटिया कोंध पहाड़ के नीचे वन जंगलों में पेड़-पौधों से परिपूर्ण स्थान पर स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करता है । उनके गाँव के चारों ओर हरियाली है । जहाँ पर भालू, शेर, हिरन, बंदर आदि विविध वन प्राणी देखने को मिलते हैं । वे जीविकोपार्जन के लिए जंगल पर निर्भर होते हैं । तथा जंगल से विविध फल, फूल, कंध मूल, आम एवं महुआ आदि संग्रह करके जीविकोपार्जन करते हैं । वे मुख्यतः झूम खेती पर निर्भर होते हैं । कोंध आदिवासी पहाड़ों के ढ़लानों पर घर बनाते हैं, ताकि अपनी झूम खेती की रक्षा कर सकें ।

कोंध पुरुष की वेश-भूषा आमतौर पर धोती, गंजी जबकि महिलाओं में साड़ी, सलवार, कमीज और दुपट्टा है । विशेष रूप से कोंध आदिवासी गहनों के बहुत शौकीन होते हैं । वे गर्दन, कान, उंगली, बाल, नाक सलाई और पैरों में गहने पहनते हैं । ये गहने मुख्यतः कांस्य, खोल, सोना, पीतल, स्टील आदि धातु से बने होते हैं ।

उनके पारंपरिक रीति-रिवाज एवं भावों का आदान-प्रदान मुख्य धारा के समाज से पृथक् रहा है । किंतु आज कोंध समुदाय की सामाजिक संरचना मूल रूप में नहीं रही है । तात्पर्य यह है, कि बाह्य प्रभाव, यातायात, आवागमन तथा शिक्षा का प्रसार उनके जीवन के हर पहलुओं को प्रभावित करती हैं । जिससे उनकी सामाजिक संरचना में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । उनकी सांस्कृतिक धरोहर मौखिक रूप में विद्यमान हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होती रही है, इस संप्रेषित प्रक्रिया में युग विशेषताओं से अवगत हो कर उनकी सांस्कृतिक धरोहर में परिवर्तन होना भी स्वाभाविक है । लेकिन आज इनकी पहनाव में काफी परिवर्तन देखा सकता है ।

2.2.2.2. डंगरिया कोंध

'डंगरिया कोंध एक उपजाति' है । डंगरिया का अर्थ है, 'डोंगर' यानी 'जंगल' जो डोंगर में निवास करते हैं । उन्हें 'डंगरिया कोंध' कहा गया है । वे मुख्यतः रायगडा जिले के विषमकटक, मुनिगुडा, कल्याणीसिंग पुर ब्लॉक के अंतर्गत नियमगिरि पहाड़ के नीचे निवास करते हैं । नियमगिरि पहाड़ के चारों ओर लगभग 8 हजार से अधिक डंगरिया कोंध रहते हैं । उस पहाड़ के श्रृंखलों में 250 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में लगभग 70 लाख टन बॉक्साइट का भंडार है । वहाँ पर डंगरिया कोंध के गाँव स्थित है । यहाँ का परिवेश झूम खेती करने अनुकूल है । वे वहाँ पर

अपने घरों का निर्माण करते हैं । नियमगिरि पहाड़ के प्राकृतिक हरियाली में विविध किस्म के जंगली पदार्थ, कंद-मूल, फल-फूल इकट्ठे करके जीविकोपार्जन करते हैं। वे मछली, केंकड़े, कछुए एवं गोह जैसे जीवों को आग में भून कर खाते हैं। उन्होंने अपनी परंपरा एवं संस्कृति को बचा करके अपनी अस्मिता को कायम रखा है। डंगरिया कोंध नियमगिरि पहाड़ को इष्ट देवता (पेन्नु) के रूप में मानते हैं। इस रूप में उनकी प्राचीन परंपरा आज भी कायम है । डंगरिया कोंध की वेश-भूषा, रीति-रिवाज एवं जीवन शैली दूसरे समाज से पृथक रही है। वे अपने आपको डंगर कुआँ या ड्रिल कुआँ के नाम से परिचय देते हैं।

डंगरिया कोंध के पुरुष या स्त्रियों की प्राचीन परंपरागत वेश-भूषा का परिधान करते हैं। डंगरिया पुरुषों का पहनावा भिन्न किस्म का होता है। वे 12-13 फीट का एक कपड़ा आगे-पीछे करके पहनते हैं । उसे ड्रिलि कहा जाता है । किंतु बुजुर्ग व्यक्ति एक छोटा-सा कपड़ा व्यवहार में लेते हैं । जिसकी लंबाई लगभग चार फीट की होती है । लेकिन आज डंगरिया कोंध समुदाय आधुनिक सभ्यता के संपर्क में आने पर कई आधुनिक वेश-भूषाओं का व्यवहार करने लगे हैं, जैसे- शार्ट, टी-शर्ट, गंजी आदि । डंगरिया महिलाएँ दो प्रकार के कपड़ा पहनती हैं, जिसकी लगभग तीन फीट की लंबाई होगी । कपड़े को कमर के चारों ओर बांधती है। दूसरा कपड़े से ऊपरी अंश को ढ़कती है। डंगरिया कोंध महिलाएँ एवं पुरुष दोनों लंबे-लंबे केश रखने के शौकीन होते हैं, और केशों से जूड़ा बाँधते हैं, और बालों को सजाने के लिए लकड़ी से बनी हुई कंघी का प्रयोग करते हैं । वे गर्दन, कान, उंगली, बाल, नाक, हाथ और पैरों में गहने पहनते हैं । ये गहने मुख्यतः कांस्य, सोना, पीतल, स्टील आदि धातु से बने होते हैं।

2.3. कोंध आदिवासियों का रहन-सहन

कुटिया कोंध एवं डंगरिया कोंध समुदाय का रहन-सहन प्रस्तुत किया गया है। उनकी रहन-सहन, भाषा, सामाजिक व्यवस्था, पर्व-त्योहार एवं पूजा-विधियों का उजागर किया गया है।

2.3.1. कोंध आदिवासियों के गृह का निर्माण

कोंध आदिवासी गृह निर्माण करने से पहले उपयुक्त स्थान तय करता है। उस स्थान पर पहले देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। तत्पश्चात गृह निर्माण का प्रारंभ किया जाता है। कोंध का गृह निर्माण अलग प्रकार का होता है। कोंधों का घर दो सीधे लंबे कतारों में जो एक-दूसरे से सटी हुई होती है, और मध्य में एक खुला लंबा रास्ता होता है। उनके गृहों का निर्माण पहाड़ी या मैदान अंचलों में भूमि से लगभग 9 से 10 फीट की उंच्चाई तक मिट्टी से दोनों तरफ दीवार खड़ी की जाती है। साधारणतः तीन कमरें वाला घर बनाया जाता है, और बीच में एक लंबा वरामद होता है। घर के तीन कमरों का नाम भी अलग-अलग है। पहला वाला कमरा 'आंगेणी' (आंगन), बीच वाले कमरे को 'इजाड़ोइ' और पीछे वाले कमरे को 'जोका' कहा जाता है। पहला वाला कमरा 'आंगेणी' में धान कूटने वाला (हेनी) एवं माडुवा कुटने वाला (नुयाकालु), बैठने के लिए पिंडा आदि होते हैं। इस कमरे में रात का बचा हुआ खाना भी सुबह तक रखा जाता है। बीच वाले कमरे 'इजाड़ोइ' में खाना पकाया जाता है और वहीं पर परिवार के लोग सोते हैं। पीछे वाले कमरे में कई प्रकार के औजार रखे जाते हैं। मिट्टी से पूरी दीवार खड़ी होने के पश्चात छत डालने की व्यवस्था की जाती है। उस दौरान अड़ोस-पड़ोस के रिश्तेदारों से सहायता ली जाती है। उस दिन परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य में लिप्त रहता है। साधारणतः महिलाएँ मिट्टी गोबर से मिला कर

घर की लीपाई-पोतई के कार्य में व्यस्त रहते हैं, और पुरुष जंगल से खुँटिया एवं छत के लिए जंगली घास लेकर आते हैं। तत्पश्चात पुरुष दीवार के चारों ओर खुंट गाड़ने का काम करते हैं। खुंटियों के ऊपर मजबूत लकड़ी एवं बाँस से पारंपरिक ज्ञान कौशल का प्रयोग करके उन्हें सजाया जाता है, और रस्सी से मजबूत तरीक से बाँस एवं लकड़ी को बांधा जाता है। बाँस एवं लकड़ी के ऊपर जंगली घास (विक्का) से सजाया जाता है। यदि घास सजाते वक्त थोड़ी भी गड़बड़ी होगी तो तेज बारिश का पानी आसानी से छत के नीचे प्रवेश कर सकता है। इसलिए जिसके पास घर निर्माण करने का कौशल है, वही इस प्रकार का कार्य कर सकता है। घर के बीच वाले कमरे में 'मादुरी' (छत के नीचे वाला) का भी निर्माण किया जाता है। यह मादुरी मिट्टी एवं मजबूत लकड़ी से बनाई जाती है। इसका खासियत यह है कि बारिश के मौसम में बिजली से रक्षा मिल सके। उसी बीच वाले कमरे में मादुरी के नीचे एक 'आटु' का निर्माण किया जाता है, उसमें कई प्रकार के सामान एवं अनाज रखा जाता है, और आटू के नीचे देवताओं की प्रतिमा रखी जाती है। उसके बगल में अनाज सूखाने के लिए 'डोवेरी' का निर्माण किया जाता है। पीछे वाले कमरे में ही मुर्गा पालने एवं विविध किस्म के उपकरण रखे जाते हैं। यथा- कुल्हाडी फावड़ा एवं कृषि से संबंधित औज़ार आदि। जिस दिन संपूर्ण रूप से निर्माण का कार्य क्रम संपन्न हो जाता है। उस दिन अपने रिश्तेदारों को निमत्रण दिया जाता है, और हर्ष-उल्लास से भोज एवं मद्यपान होता है।

यदि परिवारों की संख्या में बृद्धि होती है तो अलग से घर बनाना अनिवार्य होता है। ऐसी स्थिति में घर के बड़े भाई शादी पश्चात् अलग होना पसंद करता है। इसलिए वह अलग से घर का निर्माण करता है। किंतु आज के दौर में ऐसे पुराने घर कम मात्रा में देखने को मिलते हैं। क्योंकि सरकार की सहायता से इंदिरा आवास द्वारा पक्का घर दिया जा रहा है, और कई लोग अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पक्का घर बना रहे हैं।

2.3.2. कोंध आदिवासियों के जीविकोपार्जन

कोंध आदिवासी स्वभाव से सरल एवं मेहनती होते हैं । वे सुबह मुर्गे की आवाज़ सुनते ही जाग जाते हैं, तत्पश्चात अपने बैल, बकरा एवं भैंसों के साथ खेत खलिहानों में पहुँच जाते हैं, और दिन भर काम करके शाम को घर लौटते हैं । पुरुष सुबह कुछ खाये बिना खेतों में चले जाते हैं । इसलिए घर की स्त्रियाँ उनके लिए भोजन तैयार करके लेकर जाती हैं । वहाँ वे भोजन करने के पश्चात फिर से काम में लग जाते हैं । घर के छोटे बच्चों को छोड़कर सभी को काम करना अनिवार्य है । शाम को लगभग 4-5 बजे काम से लौटते हैं, और वक्त मिलने पर जंगल से कुछ लकड़ी भी लेकर आते हैं । इस प्रकार कोंध आदिवासी दैनंदिन जीवन निर्वाह करते हैं ।

कोंध समुदाय जीविकोपार्जन हेतु जंगल पर निर्भर होता है । जंगल से वे विविध फल-फूल, कंदमूल आदि जंगली जातीय पदार्थ संग्रह कर जीवन निर्वाह करते हैं । वे ऋतु के अनुसार अलग-अलग सामग्री संग्रह करते हैं । ग्रीष्म ऋतु में आम, कटहल एवं महुआ तथा वर्षा ऋतु में सीता फल, कंदमूल (राणा कंदा, होपा, कापणी कारा, श्रीगेली कारा), जंगल के कुकुरमुत्ता एवं बाँस आदि संग्रह करके जीवन निर्वाह करते हैं । कोंध आदिवासी माँसाहारी होते हैं । इसलिए मुर्गा, बकरा एवं गो माँस आदि भक्षण करते हैं । उनके समाज में मद्यपान करना एक पारंपरिक अभ्यास है । वे कई तरह का मद्यपान करते हैं । यथा-महुआ मद्य (इरिपी काडु), ताड़ी (मारुनु काडु) एवं गुडु काडु आदि । मद्यपान करने से पहले उनके पूर्वजों एवं देवी-देवताओं को मद्य दिया जाता है । मद्यपान करने का तात्पर्य यह है कि वे दिन भर खेतों में कार्य करते हैं । इसलिए थकान दूर करने हेतु रात को थोड़ा सा मद्यपान करके आराम से सो जाते हैं । उनके सामाजिक रीति-रिवाजों एवं कई

धार्मिक अवसरों पर भी मद्य व्यवहार करना अनिवार्य समझ जाता है । इसलिए उनके समाज में मदिरा संस्कृति का हिस्सा है ।

2.3.2.1. शिकार

कोंध आदिवासी की संस्कृति में शिकार एक लंबी परंपरा रहा है । उनका उद्देश्य केवल वन्य प्राणियों का शिकार करना नहीं बल्कि उनके जीवन का एक अभिन्न हिस्सा भी है । लिहाजा शिकार उनकी संस्कृति से जुड़ा होता है । कोंध समुदाय में शिकार होली के त्योहार के पश्चात होता है । होली का त्योहार लगभग एक हफ्ते तक चलता है । उस दौरान कोंध समुदाय के लोग शिकार करने हेतु जंगल में जाते हैं । शिकार करने हेतु गाँव से प्रस्थान होने से पहले इष्ट देवता 'जाकेरी पेन्नु' (धार्ती पेन्नु) के चरणों पर पूजा की जाती है । तत्पश्चात जंगलों में शिकार करने हेतु जाते हैं । उस दौरान किसी जादू-टोनी वाली बुढ़िया को देखने के बाद वापस घर लौट जाते हैं । क्योंकि ऐसी बुढ़िया को देखने से अशुभ माना जाता है । कोंध आदिवासी शिकार करने में प्रवीण होते हैं । उनकी शिकार करने की विधि अलग किस्म की होती है । वे जगंल में जाकरपहले जंगली प्राणी का पदचिह्न निश्चित करते हैं । उसी चिह्न को निशाना बना कर आगे बढ़ते हैं । तत्पश्चात दो भागों में बंट जाते हैं । जिसके पास धनुष, तीर एवं बंदूक होता है, वे आगे जाते हैं, और बाकी सब पीछे से तेज आवाज़ करके आगे की ओर बढ़ते हैं, जिससे आगे रहने वाले उन्हें आसानी से अपना निशाना बना सकें । शिकार के दौरान कुत्ते को भी साथ लेकर जाते हैं । कुत्ते को शिकार का प्रशिक्षण दिया जाता है । इसलिए कुत्ता जंगली प्राणी को शिकार करने में प्रवीण होता है । यदि शिकार में सफल होते हैं तो पहले इष्ट देवता के चरण पर खून अर्पित किया जाता है । तत्पश्चात ही शिकार का माँस भक्षण किया जाता है ।

2.3.2.2. कृषि

आदिवासी समुदाय कृषि पर परंपरागत रूप से निर्भर है । कृषि उनके जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत है । पुराने जमाने में जंगल को साफ करके झूम खेती करते थे । किंतु आज उस झूम खेती पर उपजाऊ जमीन तैयार करके कृषि हेतु उसका प्रयोग किया जा रहा है । उस उपजाऊ जमीन पर विविध किस्म के फसल उपज की जाती है । सोपान प्रणाली का अवलोकन करके धान, माँडिया माडुवा (रागी), आलु मिर्ची एवं कंद मूल आदि उपज किया जाता है ।

कोंध आदिवासी पारंपरिक ज्ञान कौशलों का प्रयोग करके खेती करता है । वे भैंस, बैल एवं गाय के साथ खेत जोतते हैं । दरअसल वे जून के महीने में खेत जोतना प्रांरभ करते हैं । जिस खेत में बीज बोया जाता है, उस खेत में चार-पाँच बार हल चलाया जाता है । तत्पश्चात धान एवं माँडिया का बीज बोया जाता है । ऐसे कार्यों में एक दूसरे की सहायता ली जाती है ।

कोंध समुदाय में सदियों से झूम खेती करने हेतु अपनी-अपनी सीमा निश्चित करता है । इसलिए एक दूसरे की जमीन पर जबरन खेती नहीं करता है । पहले जंगल को काट करके साफ किया जाता है, और उसे 15-20 दिनों तक सुखाया जाता है । तत्पश्चात वहाँ के लकड़ी एवं पत्ते सुखाने के बाद आग से जलाया जाता है । उस दौरान औषधीय पेड़-पौधों एवं मूल्यवान पेड़-पौधें पर ध्यान दिया जाता है । आग से जलने के बाद बची हुई लकड़ी को साफ़ करके विविध किस्म के बीज बोये जाते हैं । यथा- विविध रंग के मक्का, बाजरा, माडिया, जंगल का धान, कांगा एवं कोदो आदि । बीज बोने से लेकर फसल उपज होने तक झूम खेत में जाना अनिवार्य होता है । वहाँ पर छोटी-सी झोपड़ी बना कर रहना पड़ता है । ताकि फसल को पशु-पंछीओं से रक्षा मिल सकें । झूम खेती में कठिन परिश्रम करना पड़ता है । इसलिए एक दूसरे की सहायता लेना पड़ता है। यह खेती एक स्थान पर लगभग तीन-चार साल तक होती है । तत्पश्चात वहाँ फसल की उपज कम हो जाती

है । इसलिए यह झूम खेती स्थानांतरित होती रहती है । किंतु आज सरकार की ओर कई प्रकार की सहायता मिल रही है । ओड़िया सरकार द्वारा गरीब आदिवासियों को एक व्यक्ति के प्रति एक रुपया में पाँच किलो चावल दिया जा रहा है। इसलिए आज इस प्रकार की खेती समाप्त होने के कगार पर है।

2.3.2.3. कोंध समुदाय की आर्थिक स्थिति

संसार में मानव का विकास अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है । इस अर्थ व्यवस्था के दायरे में कई आदिवासी समुदाय काफ़ी पिछड़े हुए हैं। ओड़िया के कोंध आदिवासी आज भी प्रकृति पर निर्भर होता है, और वह पहाड़, वन, जंगलों में त्रासदी जीवन निर्वाह करता है । इसलिए जंगल से विविध किस्म के फल फूल, शहद, माहा (आम), पाणासा (कटहल), दुरी (केंदु), लेली (इमली), जांबुकोली, लुदु पिणा, मुक्कु पाडी, दूरी आका, वेस्का (लकड़ी), हादेड़ी, जुणा, टांडी हिंचु, लिंबा (लिंबू), कमला, हल्दी, मिर्च, खीरा आदि संग्रह करके बाजार में बेचते हैं, जिससे उन्हें दो पैसा का रोजगार हो जाता है। महुआ के फूलों को सुखाकर शराब बना कर स्वयं पीते और बेचते भी हैं। उनके समाज में कृषि के अलावा पशु पालन भी किया जाता है। यथा-गाय, भैंस, भेड़, बकरा, मुर्गा आदि। यह धंधा करके जीवन निर्वाह करते हैं। इससे उनकी अपनी बुनियादी समस्या दूर जाती है। वे बाजार में जाकर कई प्रकार की सामग्री लेकर आते हैं, यथा- तेल, साबुन, प्याज, मिर्च, आलू एवं वस्त्र आदि।

आज कोंध आदिवासी बाहरी सभ्यता से संपर्क में आने पर उनमें शिक्षा की जागरूकता एवं व्यवसाय की जागरूकता पनप रही है, जिससे धीरे-धीरे उनकी आर्थिक तंगी दूर हो रही है । किंतु आज भी उनके समाज में वेरोजगार की संख्या बड़ती जा रही है, और वे रोजगार की तलाश में बड़े-बड़े महानगरों (तमिलनाडु, केरल) में पलायन कर रहे हैं, जिससे उनकी संस्कृति एवं भाषा खतरे में है । कोंध

समाज के पुरुष ही नहीं बल्कि महिलाएँ भी घर से बाहर निकल कर रोजगार की तलाश करने में मजूबर हो रही हैं, और ऐसी स्थिति में महिलाएँ कई समस्याओं से ग्रसीत हो रही है । किंतु शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु उनमें जागरूकता धीरे-धीरे फैल रही है, और कुछ कोंध आदिवासी सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं में नौकरी करने लगे हैं। इस प्रकार कोंध आदिवासी जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

2.4. कोंध आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था

संसार के प्रत्येक आदिवासी समुदाय में पृथक्-पृथक् सामाजिक संरचनाएँ पाई जाती हैं । उनके समाज में पुरखों द्वारा बनाई गई सामाजिक संरचनाओं का पीढ़ी दर पीढ़ी अवलोकन किया जाता है। आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्थाओं के बारे में मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों में मत भेद पनपता है । किंतु कुछ विद्ववानों का मत इस प्रकार हैः-

"नातेदारी, सामान्य निवास स्थान, सामान्य भाषा, संयुक्त स्वायित्व और एक राजनीतिक संगठन को जनजाति के मुख्य लक्षण माना जाता है"।[24]

इस परिभाषा का आशय यह है कि जनजातीय समाज में एक निश्चित भूभाग में निवास करता है, और उनकी अपनी भाषा या बोली होती है । उनकी अपनी सामाजिक नातेदारी व्यवस्था है। कोंध समाज में भी दूसरी आदिवासियों की भांति अपनी अलग सामजिक संरचनाएँ विद्यमान हैं । उनके समाज में कई प्रकार के गोत्रों, उप गोत्रों एवं नातेदारी व्यवस्था भी पाई जाती है।

[24] रामनाथ शर्मा, (2004) राजेंद्र कुमार शर्मा, (2004) मानवशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स, पृ.सं- 214

2.4.1. पारिवारिक व्यवस्था

मानव का विकास परिवार से ही प्रांरभ होता है। प्रत्येक मानव समुदाय के लिए परिवार ही महत्वपूर्ण होता है। समाज की लघुतम इकाई परिवार होती है। जहाँ पर एक ही पूर्व पुरुष के वंशज माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन एकत्रित हो कर रहते हैं। प्रत्येक परिवार का अपना महत्व रहता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। लिहाजा मानव समुदाय के लिए परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है। दूसरे समाज की भांती कोंध समुदाय में भी अपनी अलग सामाजिक संरचनाएँ हैं। उनके समाज में कई प्रकार की पारिवारिक संरचनाएँ देखने को मिलती है। यथा- पितृसत्तात्मक परिवार, मातृसत्तात्मक परिवार एवं संयुक्त परिवार आदि।

2.4.1.1. पितृसत्तात्मक परिवार

जिस परिवार में पिता की भूमिका अहम होती है। ऐसे परिवार को पितृसत्तात्मक परिवार कहा जाता है। घर की सारी देखभाल करने लिए पिता जी की जिम्मेदार होती है। ऐसे परिवार में अपने नीति-नियम होती है। उस नीति-नियमों का घर के प्रत्येक सदस्य को पालन करना होता है। परिवार के लिए रोजगार की व्यवस्था पिता की जिम्मेदारी होती है। कोंध समाज में लिंग का भेद भाव दिखाई नहीं देती है। लिहाजा पुरुष व महिला सभी लोग मिल-जुल कर कार्य करते हैं। उनके समाज के माँगलिक अवसरों पर पिता की अहम भूमिका होती है। जब पिता जी काम करने में असमर्थ हो जाते है। ऐसी स्थिति में घर के बड़े बेटे को परिवार की सारी जिम्मेदारी सौंप दी जाती है। तत्पश्चात बेटा शादी करके परिवार की सारी जिम्मेदारी भली-भांति निभाता है। कोंध समुदाय भले ही पितृसत्तात्मक परिवार रहा हो किंतु स्त्रियों का योगदान भी परिवार के लिए कम नहीं है। घर के विवाहित स्त्रियाँ अपने बच्चों को संभालने के साथ-साथ घर के काम

काज में भी योगदान देती हैं। परिवार के सारी महिलाएँ अपना काम निभाने के बावजूद मर्दों का काम भी करती हैं, यथा- खेत जोतना, जंगल से लकड़ी लाना, झरना से पानी लाना, गाय, बकरा एवं भैंस चराना आदि कार्यों में भी योगदान देती है। इसलिए पितृसत्तात्मक परिवार में स्त्री की भूमिका अहम होती है।

2.4.1.2. संयुक्त परिवार

जिस परिवार में पितृवंशीय दो तीन पीढ़ी एक साथ रहती हैं। ऐसे परिवार को संयुक्त परिवार कहा जाता है। कतिपय कोंध आदिवासी समाज में संयुक्त परिवार पाए जाते हैं। परिवार में दादा-दादी, माता-पिता, भाई-बहन, सास-ससुर एवं देवर जेठ ये सारे लोग पृथक्-पृथक् न रह कर एक साथ रहते हैं। ऐसे परिवार में वरिष्ठ पुत्र को घर की जिम्मेदारी दी जाती है, और परिवार की संपूर्ण सत्ता एवं आर्थिक अधिकार उसके हाथ में रहता है। तथा परिवार के सभी सदस्यों वरिष्ठ पुत्र के निर्णय पालन करना अपरिहार्य है। किंतु ऐसे संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था अधिक जटिल होती है। लिहाजा कोंध समाज में संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था कम पाई जाती है।

2.4.1.3. कोंध समुदाय में पँचायत व्यवस्था

कोंध समुदाय में अपनी अलग-अलग प्रशासनिक या पंचायती व्यवस्थाएँ हैं। जहाँ पर उन्हें अपने-अपने सामाजिक नीति-नियमों का पालन करना होता है। गाँव का मुखिया जिन नीति-नियमों को निर्धारित करता है, उसका गाँव वाले तहेदिल से स्वागत करते हैं। पंचायत का मुखिया बनने के लिए कई प्रकार की योग्यताएँ आवश्यक होती है, जैसे-वह गाँव के बुजुर्ग सदस्य हो, समाज के पारंपरिक ज्ञान-विज्ञान का जानकार हो, सरल स्वभाव वाला हो एवं उनकी अपनी भाषा की कहावतें, दंतकथाएँ आदि की समझ हो, ये सारी योग्यताएँ जिसके पास

होगी। ऐसे व्यक्ति को पंच का मुखिया बनाया जाता है, और गाँव में किसी परिवार के जमीन-जायदाद के लिए झगड़े हो, या किसी सामूहिक समस्या हो, किसी महिला की यौन शोषण हो। इस प्रकार की सारी समस्याएँ एवं मसलों को पंच के न्यायधीश (मुखिया) विचार-विमर्श करके समाधान करने की कोशिश करता है। अगर कोई इन नीति-नियमों का उल्लंघन करता है तो उसको गाँव से बहिष्कृत किया जाता है, नहीं तो उसे सामान्य सजा दी जाती है।

2.4.1.4. कोंध समुदाय में गोत्र व्यवस्था

आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था में गोत्र का विशेष महत्व रहा है। उनके समाज में पूर्व से निर्धारित गोत्र व्यवस्था वंशानुक्रम चली आ रही है, जिसका आज भी अवलोकन किया जाता है। गोत्र शब्द की उत्पत्ति के बारे में हरिश्चंद्र उप्रेती लिखते हैं कि -

> *"गोत्र शब्द की उत्पत्ति "गैलिक" शब्द से हुई है जो कि यूरोप में स्थित स्कॉटलैंड के पहाड़ी लोगों की भाषा से संबंधित है, जिसका तात्पर्य वंशज से होता है। इस प्रकार मूल रूप में इसका संदर्भ एक सजातीय वंशानुक्रमण समूह से है। लोई ने मातृवंशीय एवं पितृवंशीय दोनों ही प्रकार के समूहों के लिए 'कुल' (SIB) शब्द का प्रयोग अधिक उचित माना। मरडाक के अनुसार कुल का प्रयोग उन सभी समूहों के लिए किया जाना चाहिये जो कि एकपक्षीय हैं तथा गोत्र का प्रयोग केवल उन्हीं समूहों के लिये किया जाये जो स्थानीय वंशुनक्रम समूह हैं"।*[25]

कोंध आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था में गोत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। गोत्र ही उनकी सामाजिक संरचनाओं को सुदृढ़ बनाती है। कोंध आदिवासी समाज में

[25] डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती, (2000) भारतीय जनजातीयाः- संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं. 162

गोत्र को कुड़ा (कुल या वंश) कहा जाता है । उनके समाज में भाई-बहन एवं परिवार सभी सगोत्र वंशानुक्रम परंपरा में आते हैं । ओड़िया के कोंध आदिवासी अपने नाम के बाद गोत्र लगाते हैं, और आंध्र प्रदेश के कोंध आदिवासी नाम के पहले गोत्र लगाते हैं, उदाहरण के तौर पर आर्जु पुआला एवं पुआला आर्जु । वे गोत्र की व्युत्पत्ति किसी पेड़-पौधे या पशु-पक्षी से मानते हैं । सगोत्र में विवाह करना निषेध समझा जाता है । यदि उनके समाज में कोई गोत्र का उल्लंघन करता है, तो उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है, या फिर पंच द्वारा कड़ी सजा दी जाती है । यह गोत्र परंपरा आज भी कोंध समुदाय में विद्यमान है । उनके समाज में कई प्रकार के गोत्र पाये जाते हैं । यथा- टुणका, मेलका, कलाका, तिमाका, मिण्यका, साराका, सिकोका, प्रास्का, कोंडागोरी, माँडांगी, पुआला, माँडींगी, नाचीका, कुलशिका, पालाका, काड्रका, आटका, बिडिका, तांडिगी, हिमिरिका, हुईका, पेंदेंटी, निशिका, जाकेशिका, जाकाका, साहुँता, ऊलका, तोईका, सिकका, माँडिका, किलका, हिकोका, माँझी, कृसिका, कुनका, पुलाका, कुंड्रका, ताड़िका, पिडिशिका, नुंड्रकाका, कुट्रका, लिमाका, माँडिका, पिडिकाका, वाडका, कुंबुरिका, पांगी, हुईका, वेड्रका, सांहुता एवं प्रिबाका आदि । अब तक लगभग 50 गोत्रों का नामों का उल्लेख किया गया है । और भी हैं । लेकिन जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है । इन गोत्रों से यह प्रतीत होता है कि उनके प्रत्येक गोत्रों में 'का' का प्रयोग होता है । इन गोत्रों से कोंध आदिवासियों की पहचान होती है । इन गोत्रों के पीछे कई प्रकार की लोक कथाएँ एवं दंत कथाएँ प्रचलित हैं ।

2.5. कोंध आदिवासी समुदाय की कलाएँ

प्रत्येक आदिवासी समाज में अपनी अलग विशेषताएँ होती हैं । भले ही वे सभ्य समाज से अछूत रहे हो, किंतु उनका अपना पारंपरिक ज्ञान कौशल एवं कलाओं के प्रति पीछे नहीं है । कोंध समुदाय में तरह-तरह की कलाएँ विद्यमान हैं । यथा-

संगीत कला, मूर्ति कला, नृत्य कला एवं वाद्ययंत्रों की कला आदि । उनकी पारंपरिक प्रतिभा रूढ़िगत आदर्शों के रूप में संप्रेषित होती है । तथा उनके अपने शरीर को रंग-बिरंगे रूप से सजाते हैं। उनके नृत्य एवं संगीतों में प्रयोग किये जाने वाले तरह-तरह के वाद्ययंत्रों को कलात्मक रूप से बनाया जाता है घर में उपयोग के लिए लकड़ी या मिट्टी के माध्यम से कई प्रकार के औज़ार बनाये जाते हैं।

2.5.1. मूर्ति कला एवं चित्र कला

कोंध समुदाय में अपने पूर्वजों की प्रतिमाएँ एवं तरह-तरह की देवी-देवताओं की मूर्तियाँ कलात्मक माध्यम से बनाई जाती हैं । उनके घरों में हिंदू देवी-देवता नहीं बल्कि अपनी अलौकिक देवी-देवताओं की मूर्ति लकड़ी एवं मिट्टी से बनाई जाती है । कोंध आदिवासी चित्र कलाओं में प्रवीण होते हैं । वे अपने शरीर को तरह-तरह से रंग-बिरंगे रूप में सजाये हुए होते हैं । उनकी इस सजावट से सौंदर्य की पुष्टि होती है। तथा उनके घर की दीवारों, दरवाजों एवं वस्त्रों में तरह-तरह के पशु-पक्षी एवं पूर्वजों के चित्र कलात्मक रूप से बनाये जाते हैं । चित्र कला उनकी संस्कृति का हिस्सा है। इसलिए चित्र कलाओं का महत्व होता है।

2.5.2. संगीत एवं नृत्य कला

कोंध समुदाय में नृत्य एवं संगीत कला जीवन के एक अभिन्न अंग हैं। उनके नृत्य एवं संगीत में पारंपरिक प्रतिभा प्रस्फुटित होती है । कोंध आदिवासी जंगलों एवं पहाड़ों में कठिन परिश्रम करते हैं। लिहाजा अपनी थकान दूर करने हेतु संगीत एवं नृत्य का सहारा लिया जाता है । उनके समाज में धार्मिक अवसरों पर या वैवाहिक अवसरों पर तरह-तरह के नृत्य संगीत होते हैं। उनका मुख्य नृत्य 'ढेमशा' है । उस नृत्य में अविवाहित दांगडा- दांगडी (लड़का-लड़की) भाग लेते हैं, और

सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। उनके संगीतों में ताल, सुर, ध्वनि के साथ-साथ पैर से पैर मिला कर कंधे पे हाथ रख कर नृत्य किया जाता है। कोंध आदिवासी बाह्य सभ्यता के संपर्क में आने पर वे अपनी परंपरागत सारी लोक कलाओं से वे दूर होते जा रहे हैं, और कोंध समुदाय के लोग धीरे-धीरे हिंदू धर्म एवं मिशनरी धर्म की ओर धर्मांतरण हो रहे हैं, जिससे उनके पारंपरिक ज्ञान कौशल, नृत्य कला एवं संगीत कला आदि विलुप्त होने के कगार पर हैं।

2.6. कोंध आदिवासियों की भाषा

कोंध आदिवासियों की भाषा या बोली 'कुई' है, जिसका संबंध द्रविड़ परिवार से है। कोंध आदिवासी दक्षिण ओड़िया के भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने हेतु उनकी अभिव्यक्ति शैली एवं शब्दों में भिन्नता पायी जाती है। 'कुई' भाषा बोलने वालों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे- फुलवाणी, कलाहांडी एवं गजपति जिले में बोलने वालों की भाषा को 'कुई' भाषा कहा जाता है। वे अपने आपको कुईंगा या कुई कोंध कहलाते हैं। कोरापुट, रायगड़ा, मालकनगिरि एवं नंबरंगपुर जिले में बोलने वालों की भाषा को 'कुवी' कहा जाता है। वे अपने आपको 'कुविंगा' कहलाते हैं। इसलिए 'कुई' एवं 'कुवि' भाषा में अंतर्संबंध प्रतीत होता है। किंतु 'कुई' भाषा की उप बोली 'कुवि' को माना जाता है। कुई भाषा की उत्पत्ति के संबंध में भाषा बैज्ञानिकों का कहना है, कि 'कु' का अर्थ 'पर्वत' है, इससे यह प्रतीत होता है कि जो कोंध आदिवासी पहाड़ों में रहते हैं। लिहाजा उनके लिए 'कुई शब्द' का प्रयोग किया गया होगा। 'कुई' भाषा को क- ख वर्गों में बांटा जा सकता है। 'क' वर्ग के अंतर्गत 'कुई' है। कुई भाषा की उप भाषा

को 'फुलवाणी' भी कहा जाता है । 'फुलवाणी' उप भाषा को फुलवाणी, जि.उदयगिरि, बालीगुड़ा, दासपल्ल एवं कलाहांडी आदि स्थानों में बोली जाती है। 'ख' वर्ग के अंतर्गत 'कुवी' भाषा आती है । कुवी मुख्यतः कोरापुट, रायगड़ा एवं गजपति जिले में बोली जाती है ।

2.6.1. 'कुई' भाषा का व्याकरणिक प्रयोग

किसी भी भाषा को समझने के लिए उस भाषा के व्याकरणिक प्रयोग को समझना जरूरी होता है । इसलिए कुई भाषा का व्याकरणिक प्रयोग समझना अनिवार्य होता है । जिस प्रकार हिंदी या अन्य भाषाओं में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण, संबंध सूचक, समुच्चय बोधक आदि के माध्यम से व्याकरणिक विश्लेषण किया जाता है । उसी प्रकार कुई भाषा का व्याकरणिक विश्लेषण किया जाता है । जो नीचे प्रस्तुत है ।

- **संज्ञा**

किसी वस्तु, जाति, व्यक्ति, गुण, स्थान आदि के नाम को संज्ञा कहा जाता है ।
संज्ञा कई प्रकार की होती है । जैसे-

संज्ञा के प्रकार	कुई	हिंदी
व्यक्ति वाचक	गांदला	गांदला (व्यक्ति का नाम)
जाति वाचक	माणिसी	मनुष्य
भाव वाचक	क्राबी	क्रोध
समूह वाचक	कुवी (कुई) लोकु	कुई समुदाय
द्रव्य वाचक	एयु	पानी
संख्या वाचक	रोंडी	एक

- **लिंग**

संज्ञा के जिस रूप से पुरुष जाति एवं स्त्री जाति का बोध हो उसे लिंग कहते हैं। जिस प्रकार हिंदी भाषा में दो लिंग हैं। उसी प्रकार कुई भाषा में भी दो ही लिंग पाये जाते हैं, जैसे- स्त्री लिंग एवं पुल्लिंग।

स्त्री लिंग – संज्ञा के जिस रूप से स्त्री जाति का बोध हो उसे स्त्री लिंग कहा जाता है।

उदाहरण के तौर पर

कुई	**हिंदी**
इया	माँ
डोक्री	पत्नी
पोदा	लड़की
आतू	दादी

पुल्लिंग – संज्ञा के जिस रूप से पुरुष जाति का बोध हो उसे पुल्लिंग कहा जाता है।

उदाहरण-

कुई	**हिंदी**
बोपा (आबा)	पिताजी
डोक्रा	पति
डोला	बच्चा
ताता	दादा
मिला आबा	छोटे चाचा

- **वचन**

संज्ञा या सर्वनाम द्वारा वस्तु या व्यक्ति की संख्या का बोध होता है। उसे वचन कहा जाता है। कुई भाषा में दो वचन पाये जाते हैं। एक वचन तथा बहु वचन। जिसे उदाहरण के तौर पर नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

- **एक वचन पुरुष वाचक**

हिंदी- रमेश जा रहा है ।

कुई - रमेश हाजी मानेसी ।

हिंदी – राजु काम कर रहा है ।

कुई – राजु कामा किईनी ।

- **एक वचन स्त्री वाचक**

हिंदी - लड़की नदी में जा रही है ।

कुई – पोदा काडाता हाजीने ।

हिंदी – माँ खाना पका रही है ।

कुई – आया रंदा किईनीं ।

इस उदाहरण से यह प्रतीत होता है कि कुई भाषा का एक वचन पुरुष वाचक में '**सी**' एवं '**नी**' का प्रयोग होता है । उस प्रकार एक वचन स्त्री वाचक में '**ने**' एवं '**नीं**' का प्रयोग होताहै ।

- **बहु वचन पुरुष वाचक**

पुरुष वाचक संज्ञा में प्रत्यय जोड़ने से लिंग परिवर्तन होता है ।

उदा-

लड़के जा रहे हैं ।

डोलहा हाजी मानेरी ।

एक वचन	**प्रत्यय**	**बहु वचन**
डोला	हा, री	डोलाहा, डोलारी
बोपा	हा, री	बोपाहा, बोपारी

पुरुष वाचक संज्ञा में **हा** एवं **री** जोड़ने से बहु वचन रूप बनता है ।

- **बहु वचन स्त्री वाचक**

उदा – पोदाहा पाचु पाची मानु ।

महिलाएँ गीत गा रही हैं ।

उदा – इयासिका बाडता कामा किईनु ।

माताएं खेती में काम कर रही हैं ।

बहु वचन स्त्री वाचक में **'हा'** एवं **'सिका'** का प्रयोग होता है ।

2.6.2. 'कुई' एवं 'कुवी' भाषा का अंतर्संबंध

'कुई' एवं 'कुवी' भाषा के शब्दों के अंतर्संबंध को समझने के लिए इनको 'क' वर्ग एवं 'ख' वर्ग के रूप में बांटा जा सकता है, जिनका उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया गया हैः-

संज्ञा एवं सर्वनाम

क वर्ग 'कुई'	ख वर्ग 'कुवी'	हिंदी
आबा	आबा	पिता
ताड़ी	आया, इया	माँ
गानी दादा	तादा, दादा, काजा तादा	भाई
मिलका कंजु	मिला बपी	बहन
एम तांगी	ना तांगी	मेरी बहन
आपो	मिरेएँ, मिरेसी	बेटा
कुड़ा	डक्री, वाणी	पत्नी
जाना	डकरा	पति
बुड़ा आबा	ताता	दादा

बुड़ी इया	आबाआँ, बुयी	दादी
कोका	मिलाआबा,इछाआबा,कइनी आबा	चाचा
मामा	मामा	ताऊ
बाई	आवा	भाभी
आनु	नानु	मैं
इनु	निनु	तुम
इरू	मिरू	आप
एआंजु	एवारी	वे
नींगे	नींगे	आपको
नीइ	नावी	मेरा
एंबाई	ऐंबाई	कौन
आना	एना	क्या
आनाड़ी	एनातेकी	क्यों

पेड़-पौधें एवं फल

<u>क वर्ग 'कुई'</u>	<u>ख वर्ग 'कुवी'</u>	<u>हिंदी</u>
म्राह्नु	म्रानु	पेड़
पुजु	पुयु	फूल
पणसा	पणसी	कटहल
माहा	माहा	आम
इर्पी	इर्पी	महुआ
माड़ी	देरू	बांस
नेड़ी	लेली	इमली
क्रडिम्राहंडु	प्रोडी म्रानु	बरगद

जुर्गा	जुर्आ	आंवला
कांबा	प्राती	कपास
लेंबु	लिंबा	नींबू
पटा	पटा	पक्षी
सिरू	एयु	पानी
टुटू	बांडी, टुटू	पेट
तान	ताड़ी	केला
माहा	माहा	आम
पाडु	पालु	दूध
ओडा	गोरी	बकरी

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि 'कुई' एवं 'कुवी' भाषा के शब्दों में कई अंतर तथा समानताएँ दिखाई देती हैं। सामान्यतः 'कुवी' भाषा पर तेलुगु भाषा का प्रभाव है। इसलिए तेलुगु के कई शब्द 'कुवी' भाषा में मिल जाते हैं।

2.6.3. द्रविड़ भाषा का प्रभाव

कुई या कुवी द्रविड़ परिवार की भाषा है। इसलिए कुई या कुवी भाषा बोलने वालों को द्रविड़ों की उपज माना जाता है। दक्षिण केंद्र में कई सारे द्रविड़ परिवार की आदिवासी भाषाएँ बोली जाती हैं, जिसमें कुई या कुवी कोंध समुदाय की भाषा भी शामिल है। जिसे नीचे प्रस्तुत किया गया है।

कुई	**तेलुगु**	**तमिल**	**हिंदी**
तात	ताता	ताता	दादा
आया	अम्मा	आम्मा	माता
आबा	नाना	अप्पा	पिता

मामा	मामा	मामा	मामा
आमा	आत्तेय्या	आत्ता	काकी
तांगी	अक्का	अक्का	बहन
डोला	ताम्मुडु	तांबी	बच्चा
डोक्री	पेल्लेमु	मनैवी	पत्नी
नानु	नेनु	नान्	मैं
निनु	नुव्वु	निंगल	आप
नादी	नादी	ऐलुडैय	मेरा
आंबाई	एवरु	यारु	कौन
ऐनाआ	ऐटी	ऐना	क्या
मारुनु	चेट्टु	मरम्	पेड़
पुयु	पुव्वु	पू	फूल
पाणसा	पानासा पंडु	पालामालम्	कटहल
माआ	मामिडी पंडु	माम् बालम्	आम
ताडी	अरटिपाल्लु	वालै पालाम्	केला
लेली	चिंता पांडु	पुली	इमली
गोरी	मेका	आडु	बकरा
पालु	पालु	पाल	दूध
कोडी	आवु	पाशु माडु	गाय
नेहुड़ी	कुक्का	नाई	कुत्ता
बिलेई	पिल्लि	पुनै	बिल्ली

पर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि कोंध आदिवासियों की भाषा का संबंध द्रविड़ परिवार से है। यथा- 'दादा' जी के लिए कुई भाषा में 'ताता' और तेलुगु एवं तमिल

भाषा में भी 'ताता' का शब्द ही प्रयोग होता है। कुई भाषा में 'काकी' को 'आमा' कहते हैं। किंतु तेलुगु एवं तमिल में 'माँ' को 'आमा' कहते हैं। इस प्रकार कई उदाहरण देख सकते हैं, जो द्रविड भाषा के कई शब्द कुई भाषा में मिलते हैं।

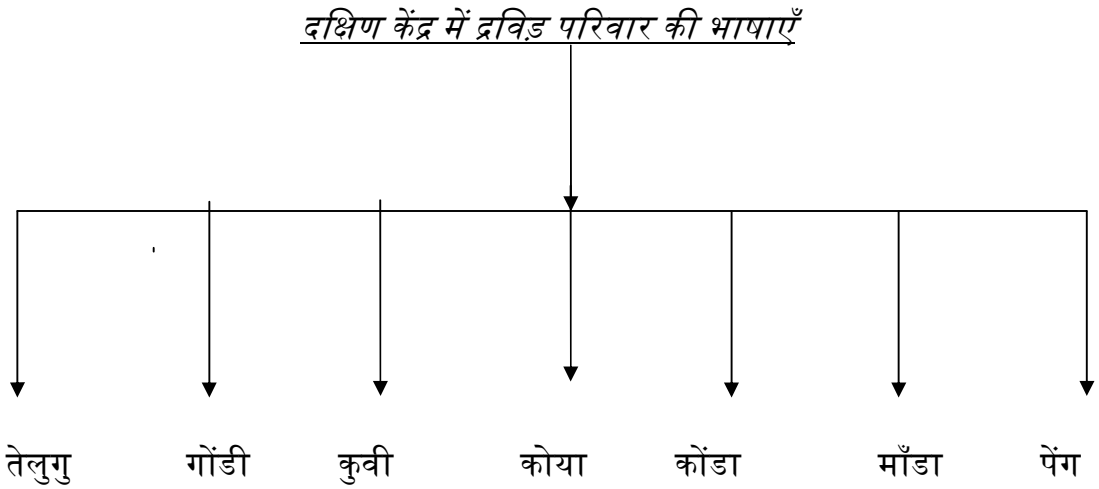

2.7. निष्कर्ष

इस अध्याय में ओड़िया के आदिवासियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के साथ-साथ कोंध आदिवासियों का परिचय भी दिया गया है। कोंध आदिवासियों का परिचय देने के पश्चात यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि उनकी जीवन शैली, भाषा, रहन-सहन, संस्कृति आदि द्रविड़ संस्कृति से काफ़ी हद तक मिलती-जुलती है।

कोंध आदिवासी आंध्र प्रदेश के सीमावर्ती अंचलों में निवास करने कारण उनकी भाषा 'कुई' तेलुगु भाषा से मिलती-जुलती है। तेलुगु में कोंडा का अर्थ 'पहाड़' है। अधिकतर कोंध आदिवासी पहाड़ों में निवास करते हैं। इसलिए शायद उन्हें कोंडा या कोंध कहा गया होगा। कोंध आदिवासियों को कई भागों में बांटा

जा सकता है। यथा- कुटिया कोंध, डंगरिया कोंध, देसिया कोंध, महियाह कोंध आदि। इनमें से कुटिया कोंध एवं डंगरिया कोंध की आबादी अधिक है। इसलिए दो समूहों की सामाजिक संरचना, संस्कृति, रीति-रिवाज एवं भाषा काफ़ी मिलती है। लेकिन उनके पहनावे से ही उनकी पहचान होती है। कोंध आदिवासी समुदाय कृषि पर परंपरागत रूप से निर्भर है। कृषि उनके जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत है, वे पारंपरिक ज्ञान कौशलों का प्रयोग करके खेती करते हैं। आज भी कोंध आदिवासी प्रकृति पर निर्भर होता है, और वह पहाड़, वन, जंगलों में त्रासदी जीवन निर्वाह करता है। इसलिए जंगल से विविध किस्म के फल फूल, शहद, माहा (आम), पाणासा (कटहल), दुरी (केंदु), लेली (ईमली), जांबुकोली, लुदु पिणा, मुक्रु पाडी, दूरी आका, वेस्का (लकड़ी), हादेडी, जुणा, टांडी हिंचु, लिंबा (लिंबू), कमला, हल्दी, मिर्च, खीरा आदि संग्रह करके बाजार में जाकरबेचते हैं।

कोंध समुदाय में अपनी अलग सामाजिक संरचनाएँ। उनके समाज में कई प्रकार के पारिवारिक व्यवस्था पाये जाते हैं, यथा- पितृसत्तात्माक परिवार, मातृसत्तत्माक एवं संयुक्त परिवार आदि। किंतु आज के दौर में संयुक्त परिवार की व्यवस्था कम पाई जाती है। उनके समाज में गोत्र का विशेष महत्व है। कुई भाषा में गोत्र को 'कुड़ा' कहा जाता है। वे स्वगोत्र में भाई-बहन मानते जाते हैं, इसलिए सगोत्र में विवाह नहीं करते हैं। उनके गोत्रों का नाम इस प्रकार हैः- टुणका, तिमाका, साराका, सिकोका एवं पुलाका आदि। कोंध आदिवासी समुदाय में तरह-तरह के कलाएँ हैं, यथा- नृत्य कला, संगीत कला, मूर्ति कला तथा वाद्ययंत्र बनाने का कला आदि। किंतु कोंध समुदाय के ये कलाएँ धीरे-धीरे विलुप्त होने के कगार पर हैं। कोंध आदिवासियों की भाषा कुई है, जिसका संबंध द्रविड़ परिवार से हैं। कुई भाषा को दो वर्गों में बंटा जा सकता है, यथा- कुवी एवं कुई है। कुवी एवं कुई भाषा का अंतर्संबंध करने पश्चात यह पाया गया है कि उनमें भिन्नता भी है और समानता भी है।

तीसरा अध्याय

कोंध आदिवासियों की संस्कृति

लोक संस्कृति का जन्म मानव समाज के विकास के साथ होता है । लोक संस्कृति का आशय यह है कि सामान्य जन की संस्कृति है। संस्कृति का अर्थ संस्कार या परिष्कार अर्थात लोक मानस के परिमार्जित संस्कार ही संस्कृति है । डॉ. हरिचंद्र उप्रेती अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि

> *"वास्तव में संस्कृति ही मानव समाज को परस्पर अथवा मानव को अन्य जीवधारियों से पृथक करती है । वर्तमान में हम संस्कृति विहीन समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।"*[26]

मानव अन्य प्राणी से इतर इसलिए है कि वह मेधावी प्राणी है । लिहाजा उसे मानव कहलाने का अधिकार प्राप्त है । मानव विकास की यात्रा में समय एवं परिस्थितियाँ परिवर्तन के साथ-साथ लोक संस्कृति में भी परिवर्तन होना लाज़िमी है। डॉ.एमेकर पवन नागनाथ के एक लेख में डॉ. सत्येंद्र की व्याख्या उल्लेखित है-

> *"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शुन्य है और जो एक पंरपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"*[27]

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि संस्कृति जन मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति का स्वरूप है । जन मानस की संवेदनाएँ, हर्ष-उल्लास, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार तथा रहन-सहन ये सारी प्रवृत्तियाँ लोक संस्कृति का अंश है।

---

[26] डॉ. हरिचंद्र उप्रेती, (2000) भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं – 220

[27] डॉ.एमेकर पवन नागनाथ, (2016) लोक साहित्यः वैश्विक परिदृश्य, यशमंत महाविद्यालय/, पृ.सं. 228

मानव अपने जीवन की अनुभूति तथा सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार करता है। विश्व के सभी मानव समाजों में अपने अलग-अलग संस्कार विद्यमान हैं। किंतु आदिवासियों की लोक संस्कृति की अपनी अलग विशिष्ट पहचान है। प्रत्येक आदिवासी समुदाय में विभिन्न संस्कार या सांस्कृतिक मान्यताएँ प्रचलित हैं। उनका अपना अलग धर्म, दर्शन, पूजा-विधि, पर्व-त्योहार एवं रहन-सहन आदि होते हैं। आदिवासी लोक संस्कृति तो जन मानस के रग-रग में समाया हुआ है। अगर उनकी लोक संस्कृति को समझना है तो उनकी मौखिक लोक-कथाएँ, लोक कहानियाँ एवं लोक गीतों को समझना होगा, ताकि उनकी लोक संस्कृति के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकें।

3.1. कोंध आदिवासियों की लोक संस्कृति

भारत के विभिन्न आदिवासी समुदायों में उनके दैनंदिन लोक जीवन के कार्यकलापों, व्यवहार, प्रवृत्तियों को आमतौर पर लोक संस्कृति के रूप में हम मानते हैं। लोक संस्कृति की अवधारणा व्यापक है, जिसकी चर्चा हमने उक्त अनुच्छेदों में की है। कोंध आदिवासी समुदाय की भी अपनी विशिष्ट लोक संस्कृति है, जिसका विस्तृत अध्ययन आगे प्रस्तुत है।

3.2. कोंध समुदाय में विभिन्न संस्कार

भारत के प्रत्येक आदिवासी समुदाय में पृथक्-पृथक् संस्कार पाये जाते हैं। इस प्रकार ओड़िया के कोंध आदिवासियों में भी कई प्रकार के संस्कार प्रचलित हैं, जैसे- जन्म-मरण संस्कार, विवाह संस्कार आदि। जिसमें उनकी सामुदायिक एकता एवं सामाजिक समरसता प्रतिबिंबित होती है।

3.2.1. जन्म संस्कार (जर्मा)

कोंध आदिवासी जन्म से लेकर मृत्यु तक कई संस्कारों से बंधा होता है । विवाह के उपरांत प्रत्येक पति-पत्नी को अपनी संतान प्राप्त करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। जन्म संस्कार का प्रारंभ स्त्री के गर्भधारण से होता है। कोंध समाज की स्त्री गर्भधारण के दौरान सामाजिक नीति-नियम का पालन करती है। उन्हें घर के काम क-ज से दूर रखा जाता है, और वह खान-पान के प्रति सावधान रहती है। प्रसव के दौरान गर्भवती स्त्री को घर के पीछे के कमरे में रखा जाता है। जिसको कुई भाषा में 'जका' कहा जाता है। वहीं पर बच्चे का प्रसव होता है। किंतु आज सरकार की ओर से स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता फैलाने की वजह से कई गर्भवती स्त्रियाँ प्रसव हेतु अस्पतालों में जाने लगी हैं। यदि घर में बच्चे का प्रसव होता है तो उस दौरान प्रसूती स्त्री की देख-भाल करने के लिए परिवार की बुजुर्ग महिला या गाँव की युवती को रखा जाता है। उन दोनों के अलावा किसी अन्य किसी को भी प्रसूती स्त्री के कमरे में प्रवेश निषेध है। अगर प्रसूती महिला को किसी भी चीज की जरूरत होती है तो वह उसके पति को खबर देती है। जन्म होने के एक हफ्ते तक दूसरे लोगों द्वारा बच्चे को गोद में लेना निषेध है। सात दिन के बाद बच्चे का ढोंढ़ी काट दिया जाता है, और घर के पीछे के खेत में ढोंढ़ी गाढ़ दिया जाता है। इसलिए वह सात दिन के बाद जका से आंगन (आंगेणी) में आ जाती है। तत्पश्चात् दूसरे लोग बच्चे को गोद में ले सकते हैं। प्रसूती स्त्री को तीन महीने तक अछूत माना जाता है। उसे तीन महीने तक आंगन (आंगेणी) में रहना पड़ता है। उस दौरान उसे कोई भी छू नहीं सकती है। सिर्फ उसका पति ही उसे छू सकता है। प्रसूती महिला तीन महीने के पश्चात् अपने व्यवहार में लिये हुए कपड़ों एवं साड़ी को नहा-धो कर और घर को गोबर से लिपाई-पोताई कर स्वच्छ करती है। तत्पश्चात घर में प्रवेश करती है। उसी दिन गाँव के मुखिया से मुहूर्त पूछने के बाद बच्चे का मुंडन होता है, और मुंड़न के बाद हल्दी, साबून, तेल लगा कर ऊष्म जल से बच्चे को

स्नान करवाया जाता है । शिशु जन्म पश्चात जो संस्कार कोंध आदिवासी मनाते है उस 'जर्मा' की संज्ञा देते हैं ।

3.2.2. नामकरण (दरू इटिनो)

नाम व्यक्ति की पहचान प्रदान करता है । दरअसल कोंध समुदाय में तीन महीनों के बाद नवजात शिशु का नामकरण का संस्कार प्रारंभ होता है । किंतु यह अनिवार्य नहीं है । वे अपनी सुविधानुसार नामकरण की तिथि निर्धारित करते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि पाँच साल के बाद भी नामकरण किया जा सकता है। इसलिए उनके नामकरण संस्कार की कोई निश्चित समय सीमा नहीं है । गाँव के मुखिया से विचार-विमर्श करके मुहूर्त तय किया जाता है । मुहूर्त तय होने के बाद सबसे पहले बच्चे के मामा को खबर दी जाती है, और सभी रिश्तेदारों, अड़ोस-पड़ोस एवं पूरे गाँव वालों को नामकरण के उत्सव में निमंत्रण दिया जाता है । नामकरण के दिन बच्चे को प्रातः स्नान करवाया जाता है, और घर को गोबर से लीप-पोत कर साफ-सुथरा किया जाता है । उसी दिन मामा बच्चे के लिए कुछ उपकरण लेकर आते हैं- जैसे- बैठने के लिए 'पीड़ा' (जोंबा), शिकार करने के लिए 'धनुष' (वेल्लु) एवं पहनने के लिए 'धोती' और रिश्तेदार भी बच्चे के लिए उपहार के रूप में कपड़ा, लुंगी एवं विविध खिलौने आदि लाते हैं । ये सारे लोग इकट्ठे होने के बाद पुजारी (जानी) नामकरण की प्रक्रिया प्रारंभ करता है । जानी घर में पूजा की सारी व्यवस्था करता है । घर के चारों ओर पत्ते से बने हुए दोने में थोड़ी सी मदिरा रखी जाती है, और एक बर्तन में पानी रखा जाता है । उसी बर्तन के अंदर पूर्वजों का नाम लेकर चावल का दाना पानी में गिराया जाता है । अगर लड़का है तो उसके दादा का नाम लिया जाता है, और लड़की है तो दादी का नाम लिया जाता है । दादा या दादी का नाम लेते वक्त पानी के ऊपर चावल का दाना तैरते रह

जाता है तो उस दिन से उसी का नाम लेकर पुकारा जाता है। नामकरण के दिन भोज का भी आयोजन होता है। ये सारे लोग नामकरण की प्रक्रिया समाप्त होने के बाद भोजन एवं मद्यपान करने के पश्चात् बच्चे को आशीर्वाद दे कर अपने-अपने घर लौट जाते हैं। इस प्रकार कोंध समाज का जन्म संस्कार संपन्न होता है।

3.2.3. विवाह संस्कार (पेल्ली/बिहां)

मानव संसार में मेधावी प्राणी होने के नाते उसकी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा है। मानव समाज में विवाह संस्था एक सामाजिक प्रथा है। विवाह का तात्पर्य यह है कि स्त्री एवं पुरुष जीवन साथी के रूप में सामाजिक बंधन में बंधते हैं। इसलिए मानवशास्त्री रामनाथ शर्मा एवं राजेंद्र कुमार शर्मा लिखते हैं-

> *"सामान्य रूप से जैवकीय, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा सामाजिक संतान प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। विवाह संबंध से परिवार की संस्था की स्थापना होती है, और स्त्री-पुरुष के संयोग से जन्म लेने वाली संतान को सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त विवाह से जैवकीय, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।"*[28]

यह विवाह संस्था में केवल यौन संबंधों की तृप्ति के लिए नहीं बल्कि बच्चों के लालन-पालन, आर्थिक सहयोग तथा वंश परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण होता है। आदिवासी समाज में विवाह संस्कार को महत्वपूर्ण समझा जाता है। उनके समाज में अलग-अलग विवाह संस्कार प्रचलित हैं। डॉ.हरिश्चंद्र उप्रेती की पुस्तक में उल्लेख है-

[28] रामनाथ शर्मा एवं राजेंद्र कुमार शर्मा, (2004) मानवशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स, पृ.सं- 313

"किसी जनजाति में विवाह की उत्कृष्टतम विधि, एक विवाह प्रथा प्रचलित दृष्टिगोचर होती है तो अन्य में अपहरण विवाह अथवा राक्षस विवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। किंहीं जनजातियों में जीवन साथी चुनने के लिये युवक व युवतियों को पर्याप्त स्वतंत्रता होती है तो किसी अन्य जनजाति में घर से बाहर काम कर रही युवतियों को बलपूर्वक उठा ले जाकर विवाह करने की प्रथा भी पाई जाती है।"[29]

इस प्रकार कोंध समुदाय में भी अलग किस्म के विवाह विधि विद्यमान हैं। उनके समाज में एक ही गोत्र की लड़की से विवाह करना पूरी तरह से निषेध है। इस समुदाय में लड़के-लड़कियों को अपना जीवन साथी का चयन करने में स्वंतत्रता प्रदान की जाती है। कोंध समाज में पहले युवा गृह या (दांगड़ा-दांगड़ी गृह) पाया जाता था। जहाँ पर लड़का-लड़की लगभग पंद्रह वर्ष की आयु के बाद युवा गृह में जाना प्रांरभ करते थे। उस युवा गृह में दांगड़ा-दांगडी एक दूसरे से मिलना-जुलना, समझना तथा यौन संबंध स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता था, जिससे एक दूसरे के संपर्क में आने के पश्चात् विवाह का रूप धारण करता है। इस प्रकार के विवाह को भी समाज द्वारा स्वीकृति मिलती है। युवा गृह में केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि कई सामाजिक पहलुओं पर भी चर्चा की जाती है। किंतु आज के वैश्वीकरण के दौर में इसका महत्व लगभग समाप्त हो चुका है। कोंध समुदाय में भी अन्य आदिवासी समाज की भांति स्वगोत्र में शादी करना निषेध है। उदाहरण के तौर पर, पुआला गोत्र के लड़का अन्य गोत्र यथा काड्राका, वाड़का, तिमाका, कंडागोरी, माँडंगी, हुईका, मिण्याका, कलाका, सिकका, मेलाका एवं जाकासिका आदि गोत्र की लड़की से विवाह कर सकता है। उनके समाज में कई प्रकार के

[29] डॉ.हरिश्चंद्र उप्रेती, (2000) भारतीय जनजातियाः संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं-111

विवाह संस्कार विद्यमान है। यथा- अपहरण विवाह, प्रेम विवाह, प्रस्ताव विवाह, बहुविवाह एवं विधवा विवाह आदि। जिसका नीचे विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

3.2.3.1. अपहरण विवाह (डेका बिहां)

कोंध समुदाय में अपहरण विवाह प्रथा प्रचलित है। कहीं काम करते हुए या कहीं धार्मिक समारोह या विवाह समारोह के दौरान अन्य गोत्र के लड़की को लड़का अपने साथियों के साथ बलपूर्वक उठा कर ले जाता है। यदि उस दौरान लड़की के परिवार वालों की नजर लड़के पर पड़ती है तो उस लकड़े को मार पीट कर लड़की को छुड़ा कर ले जाते हैं। इस प्रकार के विवाह को अपहरण विवाह कहते हैं। यदि लड़का उठा कर ले जाने में सफल हो जाता है तो घर पहुँचने पर लड़की को सफेद साड़ी पहनायी जाती है, और तुरंत लड़की अपने घर भाग जाती है। लड़के के परिवार वाले सुबह होते ही लड़की के घर पहुँचते हैं। लड़के के परिवार वालों को देखते ही लड़की दूसरे के घर चली जाती है। लड़की के परिवार वाले लड़के के परिवार वालों का अतिथि देवो भवः के रूप में सत्कार करते हैं। लड़के के परिवार वाले शांति से वार्तालाप करते हैं। तत्पश्चात् दोनों परिवार के बीच शादी के मामले पर वार्तालाप होती है। पहले लड़की की राय ली जाती है। अगर लड़की को शादी मंजूर है तो लगभग एक से दो साल तक इंतजार करना पड़ता है। लड़के-लड़की के परिवार वाले आर्थिक रूप से सुसंपन्न हैं तो सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार तीन-चार बार मद्यपान होता है। तत्पश्चात ही शादी का मुहूर्त तय होता है, और अपने सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाज के अनुसार ही शादी संपन्न होती है। यदि दोनों परिवारों की आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं है तो वर को गाँव में निर्धारित धन राशि वधू मूल्य के रूप में चुकानी पड़ती है। इस

तरह कोंध आदिवासी समाज में अपहरण विवाह का अवलोकन होता है । किंतु आज उनके समाज में अपहरण विवाह प्रथा प्रचलित नहीं है ।

3.2.3.2. प्रेम विवाह (नेही पाड़ना बिहां)

दांगड़ा- दांगड़ी (लड़का-लड़की) कहीं धार्मिक समारोह या पारंपरिक नृत्य के दौरान या युवा गृह में दोनों का मिलना-जुलना होता है । लड़का लड़की के सौंदर्य को देख कर उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करता है, और दोनों एक दूसरे के संपर्क में आने के पश्चात प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए सप्ताहिक मंडी से कपड़ा, कंगी, दर्पन एवं साबून तेल आदि लेकर आता है । जिससे दोनों के बीच प्रेम घनिष्ट संबंध स्थापित हो जाता है, जो धीरे-धीरे शादी का रूप धारण कर लेती है । वे दोनों अपने-अपने परिवारों को शादी के बारे में अवगत कराने की कोशिश करते हैं । यदि दोनों परिवार शादी के लिए तैयार है तो पहले सगाई होती है । यदि शादी मंजूर नहीं है तो दोनों दूसरे गाँव में भाग जाते हैं । किंतु कुछ दिन के बाद उनको माता-पिता ढूंढ कर लाते हैं । इस प्रकार के विवाह को प्रेम विवाह कहा जाता है । उनके समाज में प्रेम विवाह अलग किस्म का होता है । अगर परिवार वालों को लड़के-लड़की के प्रेम संबंध में जानकारी प्राप्त होती है तो उनको कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है । लेकिन बाद में स्वीकार कर लिया जाता है, और औपचारिक रूप से विवाह संपन्न होता है । अगर लड़की के परिवार वालों को शादी मंजूर नहीं होती है तो भी लड़की लड़के के घर भाग जाती है । ऐसी परिस्थिति में लड़के के परिवार के नेतृत्व में गाँव में पंचायत बैठती है । उस बैठक में वर को पंच द्वारा निर्धारित धन राशि वधू मूल्य के रूप में चुकानी पड़ती है । यदि लड़की के परिवार वालों को शादी मंजूर है तो औपचारिक रूप से विवाह संपन्न होता है । आज ऐसी शादियों में वधू की तरफ से दहेज देने की प्रथा प्रचलित हो गई है । पहले दहेज के रूप में बर्तन, साड़ी, लुंगी एवं पारंपरिक खटिया दी

जाती थी । लेकिन आज कोंध आदिवासी बाहरी समाज के संपर्क में आने से उनके समाज में भी आधुनिक भौतिकवादी साज-सज्जा उपकरण दहेज के रूप में प्रचलित हो रहे हैं । यह एक भयावह बीमारी के रूप में आदिवासी समाज में फैल रही है । इसका मुख्य कारण यह है कि आदिवासी समुदाय में आर्थिक रूप से संपन्न हुए लोग अपने समाज में दहेज प्रथा का अनुकरण कर रहे हैं । जिसका दुष्प्रभाव आर्थिक रूप से असक्षम आदिवासियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ रहा है । इस प्रकार अन्य आदिवासियों की भांति कोंध समुदाय में भी यह दहेज प्रथा बड़ी तेजी से फैल रही है । लेकिन दहेज देना अनिवार्य नहीं है । यह वधू के पिता की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है । अगर आर्थिक रूप से संपन्न है तो वह अपनी इच्छानुसार आधुनिक भौतिकवादी उपकरण दहेज के रूप में दे सकता है । जैसे- फ्रिज, ड्रेसिंग टेबल, अलमारी, वाशिंग मशीन, कार एवं बाईक आदि ।

3.2.3.3. परिवार द्वारा तय किया गया विवाह

कोंध ससाज में परिवार द्वारा तय किया गया विवाह प्रथा भी प्रचलित है । 'कुई' भाषा में होंबुरी इटाहनी (पेल्ली या बिहां) कहा जाता है । लड़के के माता-पिता बच्चे की आयु लगभग पांच- छह साल होते ही कन्या ढूंढ़ने की प्रक्रिया प्रारंभ करते हैं । लड़के की तरफ से दो बुजुर्गी महिलाएँ कन्या को देखने जाती हैं । उनको कन्या के घर पर पहुँचते ही कुछ गाली-गलौज भी सुननी पड़ती है । किंतु लड़के के पक्ष वाले थोड़ा सा भी शर्मिंदा महसूस नहीं करते हैं । क्योंकि इस प्रकार की गाली-गलौज उनके परंपरा का हिस्सा है । इस दौरान अगर रास्ते में कुछ जंगली जानवरों से मुलाकत होती है तो अशुभ माना जाता है । इस प्रकार के विवाह में वर पक्ष से कन्या के घर पर सफेद साड़ी के साथ-साथ साबुन, तेल, कंगी, पाऊड़र, कंगन एवं दर्पन आदि लेकर जाते हैं । कन्या पक्ष को यह शादी मंजूर है तो लड़की से पहले राय ली जाती है । यदि लड़की को यह शादी मंजूर नहीं है तो ये सारा सामान

वापस भेजना पड़ता है। शादी मंजूर है तो सारा सामान स्वीकार किया जाता है। वर पक्ष के परिवार को यह खबर मिलते ही उनको बड़ी खुशी की अनुभूति होती है, और वर पक्ष अपने सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार कन्या के घर पर तीन-चार बार महुआ का मद्यपान होता है। धार्मिक समारोह में वर पक्ष वाले कन्या को बुलाने हेतु जाते हैं। ये सिलसिला एक दो साल तक चलता है। तत्पश्चात शादी की प्रक्रिया प्रारंभ होती है।

3.2.3.4. विवाह विधि

प्रथम चरण – कोंध समाज में तीन प्रकार के विवाह संस्कार प्रचलित हैं। जिसका विश्लेषण उपरोक्त में किया जा चुका है। किंतु एक ही विवाह पद्धति का अवलोकन किया जाता है। विवाह के प्रथम चरण में कन्या पक्ष वाले वर के घर पर जाकर विवाह की तिथि निश्चित करते हैं। जिसको कुई भाषा में 'ईजोकुगि हानो' कहते हैं। उस दौरान गाँव के मुखिया (डिहारा) जानी एवं गाँव के हरेक घर के एक सदस्य को कन्या पक्ष की तरफ से जाना अनिवार्य है। गाँव के मुखिया दोनों परिवार के सुविधानुसार विवाह का मुहूर्त तय करता है। तत्पश्चात् उनके सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार वधू के पिता एवं मामा को गाँव की युवतियाँ हल्दी पानी से नहलाती हैं, और गाँव की युवतियाँ पसंदित युवकों को हल्दी पानी से स्नान करने हेतु मजबूर करती हैं। लड़के-लड़कियाँ मौज-मस्ती से हल्दी पानी एक दूसरे पर डालते हैं। इस स्नान प्रक्रिया की समाप्ति के बाद लड़के अपनी स्व इच्छा से हल्दी की थाली में कुछ रुपये रखते हैं। विवाह का मुहूर्त निश्चित होने के पश्चात् हर्ष-उल्लास से भोज एवं मद्यपान होता है, और शाम को कन्या पक्ष वाले अपने घर वापस चले जाते हैं। एक हफ्ते पहले दोनों परिवारों की ओर से शादी की तैयारियाँ प्रारंभ हो जाती है।

द्वितीय चरण – दूसरे दिन वधू अपनी सहेलियों के साथ शादी का निमंत्रण देने हेतु रिश्तेदारों के पास पैदल जाती है। वर की तरफ से भी गाँव वालों के सहयोग से अपने रिश्तेदारों को निमंत्रण देने हेतु जाते हैं। वधू एवं सहेलियाँ सुबह निमंत्रण देने के लिए निकल पड़ती हैं, और शाम को गीत गाते हुई घर पहुँचती हैं। यह विवाह निमंत्रण का सिलसिला एक हफ्ते तक चलता है। निमंत्रण की प्रक्रिया के पश्चात घर के चारों ओर गोबर से लीपाई-पोताई कर परिष्कार किया जाता है, और घर की दीवारों पर वैवाहिक चित्रों का चित्रांकन किया जाता है। तथा घर के आंगन में पूरे गाँव वालों के सहयोग से शादी का मंडप फूलों एवं आम के पत्तों से सजाया जाता है। विवाह के पहले दिन अन्य गोत्र की सहेलियों को अपने घर लेकर आती है। उदाहरण के रूप में पुआला गोत्र के युवक-युवतियाँ माँडांगी गोत्र वालों को अपने विवाह के दौरान साथी (संगात) बना सकते हैं। उस दौरान माँडांगी गोत्र वाले पुआला गोत्र के वधू या वर के लिए नयी सफेद धोती, कुछ चावल एवं केला लेकर उनके घर पर जाते हैं। पुआला वाले माँडिंगी वालों के पैर में पानी दे कर स्वागत करते हैं। तत्पश्चात माँडांगी वाले भोज-भात खा कर पुआला घर से विदा लेते हैं। माँडांगी वाले युवक-युवतियाँ विवाह संपन्न होने तक वधू या वर के साथ रहते हैं। उनके समाज में वधू अपनी सहेलियों को जिंदगी भर नाम लेकर नहीं पुकारती है। उन्हें 'बाबू' कह कर बुलाती है। वर भी अन्य गोत्र के साथियों को विवाह के दौरान अपना साथी बनाता है। वह अपने साथियों को 'सोई' कहता है। जब तक संपूर्ण रूप से विवाह संपन्न न होता तब तक वधू की सहेलियाँ एवं वर के साथी एक साथ रहते हैं, और एक ही थाली में भोजन करते हैं, ये परंपरा सदियों से चली आ रही है। कोंध समुदाय में दो दिन तक विवाह चलता है। पहले दिन वधू के घर में शादी होती है, और दूसरे दिन वर के घर पर होती है।

तीसरा चरण – पहले दिन वधू के घर में शादी होती है। उस दिन वधू के सारे रिश्तेदार इकट्ठे होते हैं। वधू मामा से आर्शीवाद लेती हैं, जिसे कुई भाषा में 'मुट्टा'

कहा जाता है। उस दिन वर की तरफ से लगभग दस लोग गाय एवं बकरा लेकर वधू के घर पर पहुँचते हैं। रिश्तेदार द्वारा वधू के लिए उपहार के रूप में दिये गए साड़ी, बर्तन, लुंगी एवं आधुनिक उपकरण ड्रेसिंग टेबल एवं अलमारी आदि का दहेज के रूप में दिया जाता है। उस दिन भोज आयोजन होता है। वधू के गाँव के लोग एवं रिश्तेदार दोपहर को भोज एवं मद्यपान करने पश्चात शुभ मुहूर्त देख कर दुल्हन को घर से विदाई दी जाती है। उस दौरान दुल्हन के परिवार वाले अपनी मार्मिक संवेदनाओं को गीतों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। गीत की कुछ पक्तियाँ नीचे प्रस्तुत है।

इल्लु सिंब्रा माली आयीने।
जागा सिंब्रा माली आयीने
ताड़ि गेला मो माली औशागा मो ।।
ओकेली होती माली बोरिए.. ।
आंगेणी होती माली बोरिए
नेलता हाचि माली बोरिए
ताड़ि गोला मो माली औशागा मो ।।

इस गीत का भावार्थ यह है कि अतीत में घटित सारी घटनाओं को याद करके गीत गाया जाता है। उनके साथ मिल - जुल कर खेलना, गीत गाना, नाचना एवं जंगलों से लकड़ी लाना ये सारे परिदृश्य गीतों के माध्यम से प्रकट किये जाते हैं । इस प्रकार के गीतों में प्रेम, स्नेह, ममता एवं सामूहिकता के साथ-साथ आत्मीयता भाव लक्षित होता है। दुल्हन को घर से विदा कर दिये जाने के बाद गाँव से प्रस्थान होने से पहले इष्ट देवता (जाकेरी पेन्नु) की पूजा की जाती है। शाम को लगभग छह-सात बजे वधू के साथ दांगडा-दांगड़ी एवं रिश्तेदार एक साथ वर के गाँव की ओर प्रस्थान करते हैं। उस दौरान दहेज भी साथ लेकर जाते हैं। रात भर मौज-मस्ती से गीत गा कर पैदल सफर करते हैं। वधू को पैदल सफर करवाना उनके परंपरा का हिस्सा है। उस दौरान दांगड़ा-दांगड़ी को प्रेमालाप करने का अवसर भी प्राप्त होता

है। वधू वर के घर पर सुबह लगभग 5-6 बजे पहुँचते हैं। दुल्हन दूल्हे के घर पर पहुँचते ही शादी की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

चौथा चरण – वधू को वर के घर में प्रवेश करने से पहले पैर में पानी, हल्दी, थोड़े से चावल के दाने एवं कुछ औषधीय पदार्थ को जला कर भोगव (पेजेणी) पूजा करती है, और उस दौरान घर के अंगन में सफेद साड़ी रखा जाता है, तब जाकरदुल्हन को घर में प्रवेश करवाया जाता है। वधू को घर में प्रवेश करते ही उसे नयी सफेद साड़ी पहनाई जाती है। उस वक्त वधू की सहेलियाँ वर के परिवार वालों को अपशब्दों का प्रयोग करके गीत गाती हैं। यह प्रक्रिया समाप्त होने के पश्चात् वधू एवं उसकी सहेलियाँ नहाने के लिए झरने के पास जाती है। गाँव के मुखिया के अनुसार दोपहर लगभग 12 से 1 बजे के आस-पास शादी होती है। उस दौरान वधू एवं वर के माता-पिता का मौजूद रहना अनिवार्य है। यदि किसी के माता-पिता नहीं होते हैं तो उनके रिश्तेदारों के द्वारा विवाह संपन्न करवाया जाता है, और विवाह संपन्न होने के बाद वर एवं वधू को खटिया पर बैठाया जाता है। उन दोनों को रिश्तेदारों के द्वारा उपहार के रूप में साड़ी, कपड़े, हांडी (बर्तन) एवं लुंगी आदि दिया जाता है। ये सारी विवाह की प्रक्रिया समाप्त होने के बाद वर एवं वधू को झरना में लेकर जाते हैं। झरना में जाकरपूजा करने का आशय यह है कि यदि वर या वधू के माता-पिता या दादा-दादी या परिवार के कोई भी सदस्य उनको बचपन में जाने अनजाने में श्राप दे दिये होते हैं तो उस श्राप से मुक्ति पाने के लिए झरना में जाकर पेजेणी मंत्र वचन करती है, उनके पैरों में मुर्गी की बलि दी जाती है, जिसे कुई भाषा में 'काड़ाता मेताना' कहा जाता है। उस वक्त सहेलियाँ वर को गाली-गलौज एवं अपशब्दों का प्रयोग करते हुए गीत गाती हैं। गीत इस प्रकार है।

इची कोयू आऐ डोला कुली माँजिया प्रेजाले..... ।

कजा कयू आऐ डोला कुली माँजिया प्रेजाले.....

कोयाण डोला कोयू चिंजेए ।।

हिरे सिगु आआ माड़े ।

कुली माँजिया प्रेजाले ।।

हिरे लज्जा आआ माड़े ।

कुली माँजिया प्रेजाले

कोयाण डोला कोयू चिंजेए ।।

कड़ा मुआ गाटे सी ।

केयु मुआ गाटाती

रो दिना माणेए माग्य शोलेए ।

केयु रेजा तुम कोयु शोला चिंजेए माग्य शोलेए ।।

इसका प्रसंग यह है कि छोटी मुर्गी चावल नहीं खाती, बड़ी मुर्गी भी नहीं खाती है । लगता है कि होली के अवसर पर रंग लगा रहे हैं । इसलिए तुम लज्जित महसूस कर रहे हो । तुम विकलांग हो, बंदर जैसा तुम्हारा चेहरा है, तुम कोयले जैसे काले रंग एवं दुबले-पतले हो । हमारी दुल्हन के सामने खड़े होने की हिम्मत कैसे की । कुटिया कोंध समाज में विवाह समारोह के अंतिम चरण में यह गीत गाया जाता है। दुल्हन एवं दूल्हे के माता-पिता या परिवार वाले गुस्से से शाप या गाली-गलौज दे दिये होते हैं तो उस शाप से मुक्ति पाने के लिए झरना में जाकरदुल्हन एवं दूल्हे के पैरों के नीचे मुर्गी की बली दी जाती है । उस दौरान महिलाएँ दूल्हे को अपशब्दों का प्रयोग करके गीत गाती हैं । यह प्रक्रिया समाप्त होने के बाद बाहर के लड़के वहाँ के लोगों पर पानी छिड़कते हैं, और वहाँ से सब लोग भाग जाते हैं । लेकिन सहेलियाँ दुल्हन का साथ देती है । वहाँ से दोनों सहेलियाँ दो मटकी में पानी भर के वधू को बीच में करके चार लड़के सफेद साड़ी को दोनों तरफ से बांध कर उन्हें घर

तक ले जाते हैं, ताकि वधू को धूप न लगे। दुल्हन को घर में प्रवेश करते ही सफेद साड़ी पहनायी जाती है। ये प्रक्रिया समाप्त होने के बाद महिलाएँ थोड़ा सा चावल हाथ में लेकर इस प्रकार गीत गाती हैं।

खरा बाजिले खोसला भात।

पिंगे देले किए खाईब नाई।।

टमाट खाईले खटा मा।

दूररे मारिबु टाटा मा।।

खरा बाजिले खोसला भात।

पिंगे देले किए खाईब नाई।।

हिली मिणका चिंजासी शोलेया।

काडु मुणका उंडासी शोलेया।।

खरा बाजिले खोसला भात।

पिंगे देले किए खाईब नाई।।

काणी णेआती मुदी मा।

पेडला पुंजी बुद्धि मा।।

खरा बाजिले खोसला भात।

पिंगे देले किए खाईब नाई।।

कहने का तात्पर्य यह है कि महिलाएँ दूल्हे के परिवार वालों को अपशब्दों का प्रयोग करके गीत गाती हैं। कहती हैं कि तुम्हारे खान-पान की व्यवस्था बिलकुल अच्छी नहीं है। ऐसे भोज तो कुत्ते भी नहीं खाता है। इसलिए हम दुल्हन को वापस ले जाएंगे।

अंतिम चरण - ये सारी शादी की प्रक्रिया समाप्त होने के बाद एक तरफ महिलाएँ हर्ष-उल्लास से गीत गाती हैं, और दूसरी तरफ पुरुष अपने पारंपरिक वेश-भूषा, पैरों में घुँघरू (क्रेगाहा) एवं एक हाथ में छाता दूसरे हाथ में टवाल लेकर नृत्य प्रदर्शन करते हैं। दोनों लोग ताल से ताल मिला कर बंसी बजाते हैं, और दूसरे लोग

बँसी की आवाज़ सुन कर, कदम से कदम मिला कर, छत्री को ऊपर नीचे कर, आगे-पीछे देख कर गीत गाते हुए नृत्य प्रदर्शन करते हैं। विवाह में नृत्य प्रदर्शन करना उनकी परंपरा का हिस्सा है। इस प्रकार के नृत्य आज भी कोंध समाज में विद्यमान हैं। नृत्य एवं संगीत का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद भोज एवं मद्यपान का प्रबंध होता है। तत्पश्चात दुल्हन के गाँव वाले शाम को दूल्हे के घर से प्रस्थान करते हैं। इस दौरान दूल्हे के परिवार वाले दुल्हन के परिवार वालों को लगभग आधा कि.मी. तक छोड़ने जाते हैं। दुल्हन भी अपने माता-पिता के साथ भाग जाने का अभिनय करती है। लेकिन दूल्हे के साथी उन्हें रोकने का प्रयास करते हैं। यदि भाग भी जाती है तो एक हफ्ते के बाद अपने माता-पिता के साथ दूल्हे के घर वापस आ जाती है। दूल्हे के मित्र एवं दुल्हन की सहेलियाँ दूसरे दिन अपने घर वापस जाने की तैयारियाँ करते हैं। वधू एवं वर के परिवार उनको गाँव से कुछ दूर तक छोड़ने जाते हैं। उस दौरान सड़क के बीच में वधू अपनी सहेलियों के पैरों में कुछ पैसा रख कर प्रणाम करती है, और वे भी वधू के पैरों में प्रणाम करती हैं। इस प्रकार वर भी अपने मित्रों के पैरों में प्रणाम करता है, और वे भी उनके पैरों में प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात वे अपने-अपने घर जाते हैं। यहाँ से विवाह संस्कार समाप्त हो जाता है। इसलिए कोंध समुदाय में विवाह संस्कार को अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाता है।

3.2.3.5. बहु विवाह

कोंध समुदाय में बहु विवाह प्रथा भी प्रचलित है। पति की पत्नियों को 'तोड़ा' कहा जाता है। पति अपनी मर्जी से या पत्नी की अनुमति से दूसरा विवाह करता है। यदि पहली पत्नी से संतान प्राप्ति न होती हो या शारीरिक रूप से परिश्रम करने में असक्षम हो या पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो पति दूसरा विवाह कर सकता है, और पत्नी भी पति का मृत्यु हो जाने के बाद दूसरी शादी कर सकती

है। बहु विवाह में उपर्युक्त उल्लेख की गयी विधि का अवलोकन नहीं किया जाता है, लेकिन गाँव के नीति-नियम के अनुसार पति की पहली पत्नी के गाँव वालों को गाय या बकरा देने का रिवाज है। पत्नी अपने पति को छोड़कर दूसरी शादी नहीं कर सकती है, क्योंकि इस प्रकार के विवाह को सामाजिक स्वीकृति नहीं दी जाती है। अगर दूसरे से प्रेम करके चली भी जाती है तो उसके पति के विरुद्ध समाज द्वारा बड़ा कदम उठाया जा सकता है। पत्नी यदि दूसरी शादी करना चाहती है तो उसे पहले पति से तलाक लेना अनिवार्य है, तभी जाकरवह दूसरी शादी कर सकती है। लेकिन पति दूसरी शादी करके अपनी पहली पत्नी को तलाक दे सकता है, और इस स्थिति में पति को सारा दहेज वापस करना पड़ता है। इस दौरान दहेज सामग्री को पति के अलावा कोई भी हाथ नहीं लगा सकता है। यहाँ तक की उनके परिवार वाले भी नहीं। ऐसा माना जाता है कि उनके परिवार वाले भी उससे नफरत करते थे। इसलिए दहेज सामग्री निकालने के लिए सहयोग कर रहे हैं। सारा सामान निकालने के बाद पत्नी के परिवार वाले उसे अपने घर वापस ले जाते हैं, और अब वह भी दूसरी शादी कर सकती है। कोंध समुदाय में विधवा स्त्री का दूसरी शादी करने की प्रथा भी प्रचलित है।

3.2.4. मरण संस्कार (गर्की)

मनुष्य की मृत्यु संसार का शाश्वत नियम है। प्रत्येक मानव समाज में अलग प्रकार के मरण संस्कार प्रचलित हैं। आदिवासी समाज एक ऐसा समाज है, जिनकी अपनी अलग-अलग परंपराएँ, मान्यताएँ एवं संस्कार प्रचलित हैं। इस प्रकार कोंध आदिवासी समुदाय में मरण संस्कार अलग प्रकार का होता है। यदि उनके समाज में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो बारिक या बाहक पूरे गाँव वालों को खबर देता है। मृत्यु की सूचना मिलते ही गाँव वाले अपने कामकाज छोड़ के मृतक व्यक्ति के पास इकट्ठे हो जाते हैं, और अपनी संवेदनाओं को रो-रो कर व्यक्त करते हैं।

यदि रात को मृत्यु हो जाती है तो सुबह ही शव का संस्कार किया जाता है। गाँव से दूर रहने वाले मृतक व्यक्ति के संपर्क वालों को खबर दी जाती है। सारे रिश्तेदारों के इकट्टे होने के पश्चात ही अंतिम संस्कार की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। शव की छाती पर कुछ रुपया रखा जाता है। उनका मानना है, मृतक व्यक्ति की आत्मा भूत का रूप धारण कर सकती है। इसलिए शव को श्मशाम में ले जाने हेतु खटिया पर रस्सी से बांधा जाता है। चार लोग शव को खटिया में श्मशान घाट तक लेकर जाते हैं, और मृतक व्यक्ति के सारे कपड़ों को श्मशाम में ले जाकरगाड़ दिया जाता है। शवदाह के दौरान गाँव के सारे लोग जाते हैं। कोंध समाज में शव के सिर को पूर्व की ओर मिट्टी में दफनाया जाता है। वे चार लोग ही शव का अंतिम संस्कार करते हैं। ये दफनाने की प्रक्रिया समाप्त होने के बाद कोई भी व्यक्ति पीछे मुड़ कर नहीं देखता है। श्मशाम में गये हुए सारे लोग झरने में जाकरस्नान करते हैं। और आम की छाल को केश में लगा कर अपने-अपने घर जाते हैं। जब तक शव का अंतिम संस्कार न किया जाए तब तक कोई भी व्यक्ति भोजन नहीं करता है। क्योंकि उस दौरान भोजन करने से अशुभ माना जाता है। महिलाओं का श्मशाम में जाना वर्जित है। इसलिए शव को ले जाने के बाद घर की लीपाई-पोताई कर परिष्कृत किया जाता है, और जो मृतक व्यक्ति के घर गया हो वह झरने में नहा-धो कर अपने घर जाता है। उस दिन पुराने पानी को बाहर फेंक दिया जाता है, और नये पानी से भोजन पकाया जाता है।

मृत्यु के दस दिन के बाद शुद्धि क्रिया या दोसा (कारेमी) का कार्यक्रम होता है। उस कार्यक्रम में पहले शवदाय किये हुए चार व्यक्ति, गाँव के मुखिया, जानी एवं भोगुवा को बुलाया जाता है, और गाँव वालों को एवं रिश्तेदार को भी उस अंतिम समारोह में निमत्रंण दिया जाता है। उन चार व्यक्ति देवता के लिए भोजन (बोणा रूटी) तैयार करते हैं। उनको दो मुर्गा एवं दारू दी जाती है। कई जगहों में गाय भी दी जाती है, जिसको 'कड़ि डाकिना' कहा जाता है। ये कार्यक्रम सुबह

लगभग चार बजे ही समाप्त हो जाता है। उस दिन भोज का भी आयोजन होता है। रिश्तेदार कुछ चावल एवं लुंगी लेकर जाते हैं। तत्पश्चात सारे लोग भोज एवं मद्यपान करके अपने-अपने घर चले जाते हैं। ये सारी मरण पद्धति के बाद भोगुवा (पेजेणी) बेहोश हो कर मंत्र फूंकती है, और मृत व्यक्ति की आत्मा से वार्तालाप करती है, जिससे परिवार के सारे लोगों को मृतक व्यक्ति की आत्मा से वार्तालाप करने का मौका मिलता है। यह माना जाता है कि उस दौरान भोगुवा की आत्मा में मृतक व्यक्ति की आत्मा प्रवेश करती है। इसलिए वह मृतक व्यक्ति की तरह वार्तालाप करती है। मृतक व्यक्ति की मृत्यु का कारण जानने के लिए दूसरे गाँव के भगुवा (पेजेणी) के पास जाते हैं। पेजेणी मंत्र फूंक कर यह पता करने की कोशिश करती है कि आखिर उसकी मृत्यु का जिम्मेदार कौन है ? यदि भूत-प्रेत की वजह से मृत्यु हुई होती है तो उस भूत-प्रेत को शांत करने के लिए बकरा एवं गाय की बलि दी जाती है। किंतु इस प्रकार की तंत्र-मंत्र या भूत-प्रेत को अंधविश्वास भी नहीं कह सकते हैं, और इन सब पर पूर्णतया विश्वास भी नहीं किया जा सकता है।

3.3. कोंध समुदाय के विभिन्न पर्व-त्योहार

संसार के सभी मानव समुदायों में विभिन्न प्रकार की धार्मिक मान्यताएँ एवं पर्व-त्योहार विद्यमान हैं। मानव किसी अलौकिक शक्ति पर विश्वास रखता है। जिससे दैनंदिन जीवन के सुख- दुःख से मुक्ति मिले और सफलता प्राप्ति हो सके। इसलिए वह अलौकिक शक्ति की कल्पना करता है। मानव के मन में एक डर है कि संसार को बिगाड़ना या बनाना उस अलौकिक शक्ति के वश में है। लिहाजा अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था, श्रद्धा एवं भक्ति भाव से आराधना करता है। आदिवासी प्रकृति का पूजक है। इसलिए वह पहाड़ों, जगंल एवं नदियों को ही देवी-देवताओं के रूप में पूजा करता है। उनके समाज में तरह-तरह के देवी-देवताओं की पूजा करने के साथ-साथ कई प्रकार के पर्व-त्योहार भी मनाये जाते हैं,

यथा-खेत में बीज बोने से पहले अलग त्योहार, फसल संग्रह के दौरान अलग त्योहार एवं शिकार के दौरान अलग त्योहार मनाया जाता है । पर्व-त्योहार आदिवासी संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है । जिसके माध्यम से वह अपनी खुशियाँ व्यक्त करता है, और हर्ष-उल्लास से जीवन निर्वाह करता है । उनके समाज में केवल जीवन की खुशियाँ बांटना ही नहीं बल्कि उनमें एकता एवं समन्वय की भावनाएँ भी उद्वेलित होती हैं । वे दैनंदिन जीवन में कड़ी मेहनत करते हैं, वे श्रम की थकावट से तथा जीवन की नीरसता को दूर करने के लिए उन्हें मनोरंजन की आवश्यक होती है । उनके जीवन की नीरसता एवं श्रम की थकावट इन्हीं पर्व-त्योहारों के माध्यम से दूर होती है । इस प्रकार कोंध आदिवासी जीवन में पर्व-त्योहार एक अभिन्न अंग रहा है । कोंध आदिवासीय समाज में प्रत्येक महीने विभिन्न पर्व, त्योहार मनाए जाते हैं । डंगरिया कोंध महीनों का नाम, शेतारी, शैशाखी, लांडी, बुरेणी, श्राबेणी, बोध, दाशारा, दिया, मार्गशीर्ष, पुषु, मागुणी, हिरे कुटिया कोंध आदिवासियों के महीनों के नाम, डुणुवार्शेकि, जेठा,आशेणी, स्रावेणी, ब्राशी, दासरा, दिवाडा, पुषि, पांडा, माघा, पागुणी आदि ।

कुटिया कोंध एवं डंगरिया कोंध के पर्व-त्योहार, पूजा-विधि एवं धार्मिक मान्यताओं का विवरण आगे प्रस्तुत है ।

3.3.1. टाकु पराबु (धार्ती पेन्नु)

कुटिया कोंध अपने लक्ष्य एवं कुछ उद्देश्य से देवी-देवताओं की पूजा करते हैं । कुटिया कोंध टाकु पर्व आषाढ़ माह में मनाते हैं । इस पर्व को आषाढ़ के माह में किसी एक दिन मुखिया (डिहारा) द्वारा मुहूर्त तय किया जाता है । आम के बीज को 'टाकु' कहा जाता है । टाकु पराबु का तात्पर्य यह है कि टाकु या आम का बीज बिना किसी कठिनाई के अंकुरित होता है । इसलिए ज्यादा बारिश होने की आस्था रखते हैं । उस दौरान खेत खलियानों में बीज बोया जाता है, और पर्याप्त बारिश होने से

बीज अनायास से अंकुरित हो जाता है। इसलिए टाकु पराबु में धर्ती पेन्नु (धरती देवता) की पूजा की जाती है। टाकु पूजा से पहले गाँव में एक बैठक होती है, जिसमें गाँव के मुखिया (डिहारा), जानी (जो पूजा पाठ करता), मेंबर, पेजेणी एवं गाँव के बुजुर्ग व्यक्ति उस सभा में भाग लेते हैं। उसमें पूजा के संदर्भ में चर्चा होती है। तथा पूजा की कार्यक्रम सूची तैयार की जाती है। पूजा की सामग्री हेतु सामूहिक रूप से कुछ पैसा इकट्टे किया जाता है, और मंडी में जार कर पूजा की सामग्री लेकर आते हैं।

पूजा की सामग्री –

1. वेला कयु (सफेद मुर्गा), 2. ताड़ी (केला), 3. गुड्डु (गुड़), 4. लेयां (मुडी) (चावल के दानों से बनाई जाती है), 5. दूपकाटी, 6. पुंगा (फूल), 7. बेला गोछा (बेल का पत्ता), 8. हादेडी (जंगल का पदार्थ जिसको आग में डालने से धुआँ निकलता है), 9. माँडी गुंडा (माडुवा), 10. चावल (चावल का दाना) आदि चीजों का टाकु पूजा में उपयोग किया जाता है।

पूजा विधिः- पूजा के दो दिन पहले अपने-अपने रिश्तेदारों को खबर कर दी जाती है। पूजा के पहले दिन रात को कुंवां यानि (ग्राम देवता) की पूजा की जाती है। गाँव में किसी भी माँगलिक कार्यक्रम करने से पहले ग्राम देवता की ही पूजा की जाती है। टाकु पूजा गाँव में सार्वजनिक रूप से मनायी जाती हैं। उसमें मुखिया (डिहारा) के निर्देश के अनुसार कई विधियों का पालन किया जाता है। इस पूजा में डिहारा, जानी एवं मुखिया पेजेणी अहम भूमिका निभाते हैं। धार्ती पेन्नु गाँव के बगल में होती है। वहाँ जाकरपेजेणी मंत्र वचन करती है, और जानी (ट्रंबा) पेनु धार्ती को फूल एवं चावल का दाना अर्पण करके बकरा की बलि देता है। धार्ती पेन्नु गाँव के मुख्य देवता है। इसलिए उसकी पूजा होने के पश्चात ही प्रत्येक घर में अपनी-अपनी पूजा होती है। घर में परिवार का मुखिया पूजा पाठ करता है, वह सुबह नहा-धो कर घर को गोबर से लीपाई-तोपाई कर परिष्कृत करता है। उस

दिन घर में भोज का भी आयोजन होता है। मुखि पेजेणी (मुखिया) द्वारा घर में पूजा-पाठ करने के पश्चात् ही भोज प्रांरभ होता है। उस दिन अड़ोस-पड़ोसों के रिश्तेदारों को भोजन करने हेतु बुलाया जाता है, और शाम को मौज-मस्ती से भोज एवं मद्यपान करके रिश्तेदार अपने-अपने घर चले जाते हैं।

3.3.2. नुवाखाई (कुली मर्का)

कुटिया कोंध का नुवाखाई पर्व कार्तिक माह में होता है। कुटिया कोंध की मुख्य खेती 'धान' है। कुई भाषा में 'कुली' का मतलब 'धान' है। जब तक कुली मार्का का पूजा नहीं होता तब तक खेतों से धान की कटाई नहीं की जाती है। यह नुवाखाई करने से पहले कई जंगली जातीय पदार्थों का खाना निषेध है। कोंध समाज के कोई भी पर्व-त्योहार हो या किसी भी माँगलिक कार्यक्रम का मुहूर्त हो गाँव का मुखिया ही तय करता है, इस कुली मर्का त्योहार में मुखिया (डिहारा), जानी एवं पेजेणी की भूमिका अहम होती हैं। फसल काटने से पहले भूमि पेन्नु (भूमि देवता) की पूजा की जाती है। उनका विश्वास है कि उन्हीं का दिया हुआ फल है। इसलिए भूमि देवता की पूजा करने हेतु 'नुवाखाई' त्योहार मनाया जाता है। उस त्योहार में कई सामग्रीओं का प्रयोग किया जाता है। यथा- 1. एक बेल का पत्ता, 2. खीरा, 3. कयु (मुर्गा), 4. फूल, 6. ताड़ि (केला), 7. गोबिरी काया (नारियल) आदि।

पूजा विधिः- पूजा के पहले दिन रात को जानी (ट्रंबा) के यहाँ पूजा पाठ होता है। उसमें तीन-चार पेजेणी (भगुवा) मिल कर मंत्र पाठ करती हैं। उस दिन रात को एक खेल भी होता है, और वह खेल भोगुवाओं (पेजणी) के बीच होता है। खेल का रहस्य यह है कि पेजेणी खीरा को बच्चे के रूप में जन्म देती है, और उस बच्चे (खीरा) का नामकरण भी होता है। बच्चे का नाम 'जुमा' रखा जाता है। उसकी माँ (पेजेणी)

बच्ची को हाथ में झूलाते हुए गीत गाती है। इस प्रकार के गीत को 'मुंड्र फूयु तुकना' कहते हैं।

छ्वछ्वरे जुमा।
लांबा तोडिनी माँगओ।।
छ्वछ्वरे जुमा।
तिताराणीनि माँगओ।।
छ्वछ्वरे जुमा ।
पांडुराणिनी माँगओ।।

उस बच्चे की माँ हाथ में झूलाते हुए कहती है, मेरे बच्चे कितना प्यारा है। मेरे बच्चे की नाक, कान, ओठ खूब सूरत हैं। मेरा बच्चा का नाम कितना प्यारा है। इस प्रकार गीत गा कर माँ बच्चे को अपने साथ खटिया पर सुलाती है। माँ के सो जाने के बाद बच्चे को कोई उठा कर ले जाता है। माँ (पेजेणी) चोरों का नाम पता लगाने के लिए सारे देवी-देवताओं का नाम लेकर मंत्र वचन करती है। किसी चोर का नाम पता लगाने के बाद ही बच्चे को उसकी माँ के पास पहुँचा दिया जाता है। तत्पश्चात बच्चे (खीरा) को गोद में लेकर नृत्य प्रदर्शन करती है। उस दौरान प्रत्येक घर से थोड़ा सा चावल (पोडी माँजी) लेकर जाते हैं। उस दिन रात को सारे गाँव वालों का उपस्थित रहना अनिवार्य है। दूसरे दिन सुबह होते ही सारे लोग नहा-धो कर तैयार हो जाते हैं और घर को गोबर से लीपाई-पोताई करके शुद्ध किया जाता है। तत्पश्चात जाकेरी पेन्नु (ग्राम देवता) को पेजेणी, जानि एवं मुखिया पूजा करते हैं। इस प्रकार माँगलिक कार्यक्रम को कुई भाषा में 'पुनेई तिनारी' कहा जाता है।

जाकेरी पेन्नु (ग्राम देवता) की पूजा होने के पश्चात ही अपने-अपने घर में पूजा होती है, और शाम को हर्ष-उल्लास से भोज एवं मद्यपान होता है। इन त्योहारों के माध्यम से कोंध समुदाय में आपसी भाईचारा, सामूहिकता, सौहार्दता एवं

सामाजिक संहिता का भाव भी प्रकट होता है। इस प्रकार के माँगलिक अवसरों पर अपने-अपने पूर्वजों का स्मरण किया जाता है।

3.3.3. कांदुल पर्व (हर्चा पराबु, कांगा पराबु)

कुटिया कोंध का मुख्य त्योहार कांदुल पर्व (कांगा पराबु) है। इस प्रर्व को दूसरे इलाकों में 'गोंट पराबु' भी कहा जाता है। कुटिया कोंध में भी अलग-अलग पर्व-त्योहार का नाम होता है। किंतु उनकी पूजा पद्धतियाँ एवं उद्देश्य एक ही होता है। ये त्योहार माघ माह में होता है। ये त्योहार खेतों से सारी फसल कटने के बाद ही होते हैं। क्योंकि अनाज का घर में प्रवेश करने से पहले इष्ट देवता की पूजा की जाती है। इसलिए कांगा पराबु का त्योहार मनाया जाता है। त्योहार की सारी व्यवस्था हेतु गाँव में एक बैठक होती है। उस बैठक में त्योहार की सूची और त्योहार का मुहूर्त भी निश्चित किया जाता है। वाद्ययंत्रों का तैयार करना एवं बाजार से पूजा संबंधित सामग्री लेकर आना ये प्रक्रिया एक हफ्ते के पहले से ही प्रारंभ होती है। उस दौरान सारे युवकों को नृत्य में भाग लेना अनिवार्य है। इस कांदुल पर्व में कई चीजों का प्रयोग होता है।

सामग्री - 1. नारीयल, 2. कयु (मुर्गा), 3. पुंका (फूल), 4. चावल का दाना (माँजी), 5. माँडिया (माडुवा) आदि।

वाद्ययंत्रः-1. नगाडा, 2. डापु, 3. बाजा, 4. टामा, 5. टिमकी, 6. बँसी।

पूजा विधिः- यह त्योहार दो दिन तक चलता है। उस दिन सारे लोग अपने पांरपरिक नए-नए वेश-भूषा का परिधान करते हैं। उनके समाज के किसी भी माँगलिक कार्यक्रम में पहले इष्ट देवता (ग्राम देवता) को पूजा करने के पश्चात ही अन्य पूजा विधि प्रांरभ होती है। त्योहार के दिन जानी, पेजेणी एवं गाँव के लोग झरना में जाकरवाद्ययंत्रों का पूजा करते हैं। झरना में पूजा-पाठ समाप्त होने के बाद वहाँ से एक लंबा बांस घर तक लेकरजाते हैं। उस दौरान गाँव के सारे लड़के

जंगल के विविध किस्म के छोटे-छोटे पेड़ के पत्ते पहन कर वाद्ययंत्रों के साथ गाँव के दक्षिण दिशा से प्रवेश करते हैं, और उनका महिलाएँ पानी छिड़क कर स्वागत करती हैं। तत्पश्चात वाद्ययंत्र बजाकरसारे गाँव वाले सामूहिक रूप से हर्ष-उल्लास से नृत्य प्रदर्शन करते हैं। वाद्ययंत्र की धून संगीत-नृत्य के आधार पर अलग-अलग ढंग से बजाया जाता है। जिसे कोड्ड बुडी पाडा, हिरछा पाडा एवं पेजेणी पाडा आदि कहा जाता है। 'पाडा' का मतलब है, वाद्ययंत्र बजाने की शैली। इन सारे वाद्ययंत्रों की आवाज़ से ही नृत्य की गति-यति निर्भर करती है, जिससे नृत्य करने वाले हाथ-पाँव हिलाते-डूलाते नृत्य प्रदर्शन करते हैं। इस त्योहार में एक अद्‌भूत अलौकिक शक्ति देखने को मिलती है। वाद्ययंत्रों की आवाज़ सुनते ही कुछ महिलाओं के शरीर में देवता प्रवेश कर जाती हैं, जिससे महिला बेबश हो कर नृत्य करने लगती है। इस प्रकार की अदृश्य शक्ति कोंध समाज में दृष्टिगोचर होती है। नृत्य के दौरान युवक एवं गाँव के बुजुर्ग व्यक्ति अपने देवी-देवताओं के प्रतीकों के साथ नृत्य प्रदर्शन करते हैं, और अपशब्दों का प्रयोग करके इस प्रकार के गीत गाये जाते हैं।

हिराछा वोई मानेमी पोड़ी वेचामु।
ओटा माडा काडता कोड़ी राचामु
तिरित रोस नाना काडा तो रोस।।
होरू लागाटी गाली वेताने।
लांगा एकाहा कोडामु गाली वेताने
तिरित रोस नाना काडा तो रोस।।
काशुली काशुली काडा काशुली।
काडाता माची कुपि टाडा काणा मुंजे रिते।।
तिरित रोस नाना कोडा तो रोस।

इस गीत का आशय यह है कि महिलाओं के संदर्भ में अपशब्दों का प्रयोग करके गीत गाया जाता है। नृत्य के दौरान इस प्रकार के गीत गाना उनकी परंपरा का हिस्सा है। नृत्य के पश्चात मौज-मस्ती भोज एवं मद्यपान होता है, और रात भर नृत्य प्रदर्शन होता है। दूसरे दिन अड़ोस-पड़ोस के लोग नृत्य प्रदर्शन करने हेतु जाते हैं, और उस दौरान उपहार के रूप में बकरा, गाय एवं मुर्गा आदि लेकर आते हैं। तथा हर्ष-उल्लास एवं नाच-गान समाप्त होने के उपरांत भोजन करके सभी अपने घर लौट जाते हैं। इस प्रकार के पर्व-त्योहारों में केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि परस्पर सहयोग एवं आत्मीयता भाव भी प्रकट होता है।

3.3.4. बिचा होपा पराबु (बीज बोने का पर्व)

बिचा होपा पराबु को (बीज) या बीज बोने वाला पर्व भी कहा जाता है। डंगरिया कोंध का ये पर्व कृषि से संबंधित पर्व है। यह पर्व खेती करने से पहले इनके इष्ट देवता धारणी पेन्नु की पूजा की जाती है। इस त्योहार में पेजेणी घर-घर में जाकरउनके देवी-देवताओं की पूजा करती है। उनका विश्वास है कि यह पूजा करने से बिना कठिनाई से बीज अंकुरित होता है, जिससे अधिक फसल अमल होती है। बिचाहोपा करने से पहले कोई भी आम खाना निषेध है। यदि कोई इस नियम का उल्लंघन करता है तो वह कई बीमारियों से ग्रसित हो सकता है। दरअसल डंगरिया कोंध के बिचाहोपा त्योहार चैत्र माह में होता है। इस पूजा हेतु गाँव में एक बैठक होती है। उसमें पूजा से संबंधित सारे पहलुओं पर चर्चा होती है। इस पूजा में कई सामग्री को उपयोग लिया जाता है।

सामग्री- 1. अगरबत्ती 2. दीया 3. हल्दी, 4. चावल का दाना 5. बेल का पत्ता 6. माडुवा, 7. थोड़ी सी महुआ की दारू, 8. कयु (मुर्गा) आदि।

'बिचाहोपा' त्योहार के दिन पूजा करने से पहले अन्न ग्रहण करना निषेध है। उस दिन जानी उपवास रहता है, और वह सुबह होते ही नहा-धो कर पूजा पाठ प्रारंभ

करता है । तत्पश्चात ही जानी अन्न पान करता है । पूजा के पहले दिन रात को जानी एवं पेजेणी ग्राम देवता को 'बिचाहोपा' त्योहार के संबंध में अवगत कराते हैं, और उस दिन घर-घर में अपने पूर्वजों एवं देवी-देवताओं का पूजा पाठ किया जाता है । कई घर में तो मुर्गा की भी बलि दी जाती है । जानी धारेणी पेन्नु के सामने फूल एवं हल्दी पानी अर्पण करके मुर्गा की बलि दी जाती है, और मुर्गा का खून माडूवा के दानों पर छिड़का जाता है । उनका विश्वास है कि यह पूजा करने से फसल की उपज अच्छी होगी ।

3.3.5. घंट पर्व

घंट पर्व कोंध समुदाय का एक मुख्य पर्व है । यह पर्व तीन-चार साल के बाद एक बार होता है । यदि किसी के गाँव में मृत्यु या बीमारियाँ फैल रही होती हैं तो उस संकट से बचने के लिए इस प्रकार का त्योहार मनाया जाता है । यह घंठ पर्व व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी हो सकता है । यदि किसी के घर में सारे लोगों की मृत्यु हो रही हो तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्तिगत रूप से इस त्योहार को मनाया जाता है, और मृत्यु का कारण पता लगाने के लिए पेजेणि के पास जाते हैं । पेजेणी के सपने में देवी-देवता कहते हैं ।

कुई	हिंदी
बजुणी बेशी बरषा आते ।	*ए पेजेणी बहुत साल हो गए ।*
नांगा तो सेबा किदेरू ।	*तुमने मेरी सेवा नहीं की ।*
हिंगा एयुड़े एमित् पिजेरू ।	*हल्दी पानी से नहीं नहलाया ।*
एदात किन् ए जोओ नंबेरी ।	*इसलिए तुम्हारे गाँव में बीमारियां फैल रही हैं*
आइमाने । असुबिधा आइमाने ।	*और समस्या भी हो रही है ।*
एबा तांज नांगे पूजानी आंगु ।	*मुझे हल्दी पानी छिड़क कर नहलवा दीजिए*

हिंगा इडि मितांदु ।[30] *जिससे तुम्हारे गाँव वाले बीमारियों से मुक्त हो जाएंगे ।*

दरअसल यह त्योहार वैशाख एवं ज्येष्ठ महीने में होता है । इस त्योहार के दौरान अपने-अपने रिश्तेदारों को आमंत्रित किया जाता है । रिश्तेदार उपहार के रूप में गाय, बकरा, मुर्गा, भेड एवं सुअर आदि लेकरजाते हैं । यह पर्व लगभग सात दिन तक चलता है । घंट पर्व से पहले एक सभा आयोजित होती है । इस सभा में पर्व के संदर्भ में आलोचना होती है । इस पूजा में पेजाणी-पेजु (भगत) की मुख्य भूमिका रहती है । पर्व के दौरान दूर-दराज के पेजु-पेजेणी को बुलाया जाता है । सामान्यतः यह त्योहार शनिवार के दिन प्रारंभ होता है । सारे रिश्तेदार पर्व के पहले दिन ही पहुँच जाते हैं, और घर वालों के साथ घर की लीपाई-पोताई का कार्य में सहयोग करते हैं । दूसरे दिन जानी, पेजु-पेजेणी सूबह नहा-धो कर लगभग सात बजे धरणी पेन्नु के चरण में घंट पर्व के बारे में सूचित करते हैं। धरणी पेन्नु (धरती देवता) के सामने गोबर से लिपाई-पोताई करके वहाँ पर चावल, सिंदूर एवं अगरबत्ती जला कर छोटे मुर्गी की बलि दी जाती है । उसके साथ-साथ महुआ का मद्य से धरणी पेन्नु की पूजा की जाती है । धारणी पेन्नु पूजा होने के पश्चात जानी दूसरे घरों में पूजा प्रारंभ करता है । जानी घर में पूजा करते वक्त छोटा जानी भी उसका साथ देता है, बड़े जानी जंगल सारे देव-देवताओं (पर्वत, पहाड़, जंगल, नदी एवं झरना) को मंत्रों के माध्यम से आमंत्रित करता है, और छोटा जानी उनका स्वागत करता है । यह घंट पर्व लगभग सात दिन तक चलता है । इन सात दिनों में बाहर के गाँव वाले गाय, बकरा एवं भेड़ आदि लेकर जाते हैं । त्योहार के दौरान गाँव के सारे लोग तरह-तरह के वाद्ययंत्रों के साथ हर्ष-उल्लास से नृत्य प्रदर्शन करते हैं । पूजा के आखिर दिन भोज-भात एवं मद्यपान का आयोजन होता है । उस त्योहार में कई चिजों का प्रयोग होता है । जैसे- फूंगा (फूल), नारियल, केला, घी, अगरबत्ती, बकरा, सुअर एवं मुर्गा आदि ।

[30] डंगरिया कोंध, आदिवासी भाषा एवं संस्कृति अकादमी, भूवनेश्वर, पृ.सं-१०

3.3.6. कडरू पर्व

डंगरिया कोंध का कडरू पराबु एक मुख्य पर्व है। इसे पोड़ पर्व, कुडरू पर्व आदि कहा जाता है। डंगरिया कोंध कडरू पर्व को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पाँच-दस साल में एक बार मनाते हैं। सामान्यतः यह पर्व पौष से वैशाख माह के बीच में होता है। उनके खेतों में फसन न होना, कई वीमारियों से मुक्ति पाना, अपने दुःख कष्ट को दूर करना एवं प्राकृति अपदाओं से सुरक्षा पाना तथा गाँवों के सामूहिक उन्नति के लिए यह पर्व मनाया जाता है। पहले कोंध समाज में नर बलि प्रथा हुआ करती थी। किंतु आज नर बलि के बदले गाय, बकरा, भैंस आदि की बलि दी जाती है। यह पर्व डंगरिया कोंध का बहुत बड़ा पर्व है। इसलिए उनकी तैयारी एक-दो महीने पहले से ही प्रांरभ होती है। इस पूजा हेतु गाँव में एक सभा का आयोजन होता है। जिसमें गाँव के मुखिया, जानी डिसारा, बारिक (डंब या दलित) आदि लोगों की अहम भूमिका होती है। वे लोग गाँव वालों के साथ पूजा के संदर्भ में आलोचना करते हैं। इस सभा में सभी को अलग-अलग जिम्मेदारी दी जाती है। वे लोग त्योहार के आखिरी दिन तक अपनी जिम्मेदारी ईमानदार के साथ निभाते हैं।

यह पर्व चार से पाँच दिन तक चलता है। दिसारा अपना शुभ मुहूर्त देख कर पूजा की तिथि तय करता है। त्योहार के चार दिन पहले जानी चार लोगों के साथ जंगल से बांस लेकरआते हैं। बांस लाने के पश्चात दो दिन तक पानी में रखा जाता है। उस बांस के ऊपर एक वृत्ताकार लोहे रखा जाता है। उस लोहे के ऊपर सफेद साडी बंधी जाती है। उस झण्डे को धारणा पेन्नु को सामने खड़ा किया जाता है। जानी पूजा प्रारंभ होने के पश्चात उस झण्डे को नाचते-नाचते आगे की ओर लेकर जाता है। त्योहार के दिन सारे रिश्तेदार एक बोतल मदिरा, चावल, गाय,

बकरा एवं भेड़ आदि लेकर जाते हैं। उस सामग्री को जानी पूजा मंडप पर रखता है। त्योहार के आखिरी दिन धारणी पेन्नु के सामने भैंस की बलि दी जाती है। उस दिन गाँव के सारे लोग एकत्र हो कर हर्ष-उल्लास भोज-भात एवं मद्यपान करते हैं।

3.4. अलौकिक शक्ति

संसार के अन्य आदिवासियों की भांति कोंध समुदाय भी अलौकिक शक्तियों पर विश्वास करते हैं। मृतक व्यक्ति की आत्मा की अमरता पर विश्वास किया जाता है। इससे इनकी धार्मिक मान्यताएँ निर्धारित होती है। कोंध समुदाय आत्मा, परमात्मा एवं पुनर्जन्म पर अटूट विश्वास रखता है। उनका विश्वास है कि यदि अलौकिक शक्ति या देवी-देवता असंतुष्ट हो जाते हैं तो साल भर की मेहनत नष्ट हो जाती और गाँव में अकाल मृत्यु होने की भी संभावना बढ़ जाती है। इसलिए इस भयानक अदृश्य शक्ति से मुक्ति पाने के लिए पूजा पाठ करना अत्यंत आवश्यक है। जिससे सुखमय जीवन जीया जा सकें। वे पूर्वजों की आत्मा पर अटूट विश्वास एवं आस्था रखते हैं, और पूर्वजों की आत्मा को संतुष्ट रखना चाहते हैं। उनका मानना है कि पूर्वजों की आत्मा असंतुष्ट होने से परिवार में कई समस्याएँ नहीं आ सकती हैं। इसलिए प्रत्येक पर्व-त्योहार में पूर्वजों का स्मरण किया जाता है। उनके पर्व- त्योहारों में एक अद्‌भूत अलौकिक शक्ति देखने को मिलती है। वाद्ययंत्रों की आवाज़ सुनते ही कुछ महिलाओं के शरीर में देवता प्रवेश कर जाते हैं, जिससे कई महिलाएँ बेहोश हो कर नृत्य करने लगती है। इस प्रकार की अदृश्य शक्ति कोंध समाज में दृष्टिगोचर होती है।

3.5. निष्कर्ष

कोंध आदिवासियों की लोक संस्कृति काफ़ी व्यापक है। उनके समाज में कई संस्कार पाया जाते हैं, यथा- जन्म संस्कार, विवाह संस्कार एवं

मरण संस्कार आदि । इस अध्याय के अंतर्गत कुटिया कोंध एवं डंगरिया कोंध का पर्व-त्योहार, पूजा-विधि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । इससे यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि वे अपने देवी-देवताओं के प्रति अटूट विश्वास रखते हैं, और उनकी पूजा-पद्धति एवं धार्मिक मान्यताओं में सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं । परंतु उनके पर्व-त्योहारों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है । उनके प्रत्येक पर्व-त्योहार एवं मांगलिक अवसरों पर भोज-भात एवं मद्यपान का आयोजन होता है । उनके समाज में मद्यपान करना संस्कृति का हिस्सा माना जाता है । जब भी मांगलिक अवसरों पर मद्यपान होता है तो पहले पूर्वजों को दिया जाता है । कोंध आदिवासी आत्मा, परमात्मा एवं पुनर्जन्म आदि अलौकिक शक्ति पर विश्वास रखता है । उनका मानना है कि पूर्वजों की आत्मा असंतुष्ट होने से परिवार में कई समस्याएँ आ सकती हैं । इसलिए प्रत्येक पर्व-त्योहार में पूर्वजों का स्मरण किया जाता है, और वे अलौकिक शक्ति के प्रति आस्था, श्रद्धा-भक्ति भाव प्रकट करते हैं ।

*****

चौथा अध्याय

कोंध आदिवासी समुदाय का लोक साहित्य

पृथ्वी के भूभाग में निवास करने वाले जन समुदाय को 'लोक' कहा जाता है । मानव सभ्यता जितनी पुरानी है । 'लोक' शब्द भी उतना ही पुराना है । 'लोक' शब्द का प्रयोग भारत के प्राचीन हिंदू ग्रंथों में किया जाता रहा है । डॉ. राम रतन प्रसाद लिखते हैं कि -

"लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है; यहाँ तक कि देवों के भी अनेक 'लोक' माने गए हैं यथा चंद्रलोक, सूर्यलोक, यमलोक इत्यादि । इन लोकों की कल्पना पृथ्वी से पृथक वास और कार्यक्षेत्र के रूप में की गई है । गरुड पुराण में अनेक लोकों के स्वरूप और जीवन प्रणाली की चर्चा है । 'लोक' व्यक्ति के निवास और उसके कार्यक्षेत्र के सम्मिलित स्वरूप का नाम है" ।[31]

मूलतः संसार के सभी मानव जाति के लिए 'लोक' शब्द का प्रयोग किया गया है । अपितु कालांतर में मानव जाति के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उनके सामाजिक विकास, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विकास होता गया है । उनमें से कुछ आदिम जाति विकास की यात्रा में दूर रह गये हैं । जिससे मानव समुदाय दो वर्गों में बँट गया है । प्रथम वर्ग के मानव अपने अभिजात संस्कार, शास्त्रीयता एवं पांडित्यपूर्ण जीवन निर्वाह करते आए हैं । इसलिए उन्हें सभ्य, सुसंस्कृत एवं शिक्षित समाज कहा गया है । द्वितीय वर्ग के अंतर्गत वह समाज जो तथाकथित

[31] डॉ. राम रतन प्रसाद, (2014) आदिवासी लोकगीतों की संस्कृति, अनंग प्रकाशन, पृ.सं- 13

सभ्य समाज से अछूता रह गया है, और बौद्धिक रूप से कम विकास हुआ है, उस सामान्य जन के लिए 'लोक' शब्द का प्रयोग किया गया है।

"फोक (Folk) शब्द की उत्पत्ति Folc से हुई है। यह ऐंग्लो सेक्सन शब्द जो जर्मनी में Volk रूप में प्रचलित है। आंग्ल भाषा के प्रयोग की दृष्टि में 'फोक' असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा जाति का द्योतक है, पर सर्वसाधारण और राष्ट्र के सभी लोगों के लिए भी इसका प्रयोग होता है। अतः इसके संकुचित और विस्तार दोनों ही अर्थ उपलब्ध हैं।"[32]

हिंदी में 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' (folk) का समानार्थक शब्द है। इसका अभिप्राय यह है कि जिसकी अपनी अलग संस्कृति, परंपरा एवं रीति-रिवाज है।

4.1. लोक साहित्य का परिचय

'लोक' का अर्थ है सामान्य जन, तथा लोक साहित्य का तात्पर्य सामान्य जन का साहित्य है। लोक साहित्य लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति है। सामान्य जन की लोक-कथा, लोक गाथा, लोक कहानी एवं लोक गीत आदि लोक साहित्य के अंतर्गत आते हैं, जो आदिम काल से मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होते रहे हैं। यह साहित्य लिखित नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक साहित्य के संदर्भ में लिखते हैं कि –

"आदिमानव के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोकवार्ता तथा साहित्य है, हमारे विचार में लोक साहित्य लोक समूहों द्वारा स्वीकृत व्यक्ति

[32] श्याम परमार, (1954) भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं- 12

की परंपरागत मौखिक क्रम से प्राप्त वह वाणी है, जिसमें लोक मानस संग्रहीत रहता है ।"[33]

लोक साहित्य आदिम मानव जीवन का वास्तविक प्रतिबिंब है । जो परंपरागत मौखिक रूप से विद्यमान है । लोक साहित्य के अंतर्गत न परिमार्जित भाषा है, और न ही शुद्ध व्याकरणिक है । केवल अलिखित मौखिक साहित्य है । आदिवासियों के लोक साहित्य की अपनी अलग पहचान है । उनके समाज में लोक साहित्य कूट-कूट के भरा हुआ है । उनके साहित्य में जीवन से संबंधित हर पहलुओं की अभिव्यक्ति होती है । इसलिए आदिवासी लोक साहित्य को जीवन का लोक साहित्य कहा जाता है ।

आदिवासी प्रकृति की गोद में रह कर अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा एवं लोक साहित्य का निर्माण करता है । लिहाजा वह अपने आपको प्रकृति का हिस्सा मानता है, तथा प्रकृति के साथ तादात्म स्थापित करता है । इसलिए उसे प्रकृति का पूजक भी कहा जाता है । उनके समाज में कई प्रकार के लोक साहित्य मिलते हैं । यथा- पुरखा लोक कथा, पौराणिक लोक कथा, लोक गीत, लोक नाटक, कहावतें एवं मुहावरें आदि । लोक गीत लोक साहित्य का एक अभिन्न अंग है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से संप्रेषित होता रहा है । आदिवासी लोक गीत लोक मानस की संरचना है और जीवन की सहज अभिव्यक्ति है । आदिवासी खेत-खलिहानों में कठिन परिश्रम करता है, और गीतों के माध्यम से थकान दूर करता है । आदिवासी गीतों में मानवीय के साथ-साथ उनके सामाजिक रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार एवं हर्ष-उल्लास आदि दिखाई पड़ते हैं । उनके लोक गीतों में लोक संस्कृति का आभास होता है, और उनमें पीड़ा-वेदना एवं आक्रोश का भाव भी प्रकट होता है, तथा जंगल के पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों का भी चित्रण होता है । डॉ. राम रतन प्रसाद लिखते हैं-

[33] डॉ. अशोक तिवारी, हिंदी साहित्य का इतिहास, , पृ,सं. 367

"उस समाज के गीतों का प्रधान गुण है- स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता । यह गीत उतना ही स्वाभाविक है जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद है, जितना आकाश में उड़ने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र जितना गंगा जल की निर्मल धारा" । [34]

कहने का तात्पर्य यह है कि लोक गीतों में शास्त्रीयता एवं भाषा की परिमार्जित न होते हुए भी वे अपने आप में स्वाभाविक, सहज एवं स्वंयस्फूर्त अभिव्यक्ति है । इन लोक गीतों में अपने अलग गुण हैं, तथा इनमें ताल, लय, सुर और हर्ष-उल्लास आदि का संगम है । लोक गीतों में जनमानस की अभिव्यक्ति है । उनमें आशा-निराशा, आचार-विचार, सुख-दुःख एवं हर्ष विनोद आदि तत्व समाविष्ट होते हैं । अन्य आदिवासियों की भांति ओड़िया के कोंध आदिवासी समुदाय में भी अपने अलग परंपरागत लोक गीत विद्यमान हैं । लोक गीतों की विशेषताएँ नीचे दिया गया है ।

- लोक गीत लोक साहित्य का एक अभिन्न अंग है ।
- लोक गीत लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति है ।
- जन मानस के हर्ष-उल्लास, शोक-दुःख आदि भावों की अभिव्यक्ति का रूप ही लोक गीत है ।
- लोक गीत एक मौखिक परंपरा है ।
- लोक गीतों में प्राचीन मानव सभ्यता एवं संस्कृति के बिंब प्रतिफलित होते हैं ।
- लोक गीत लोक समूह में विद्यमान है ।
- लोक गीत में नारी की वेदना गीतों के रूप में उद्वेलित होती है ।
- पति-पत्नी के प्रेम, प्रेमी-प्रेमिका की विरह वेदना लोक गीतों में ही मिलती है ।
- लोक गीतों में पर्यावरण की सुरक्षा तथा उसका सदुपयोग करने का भाव भी है ।

---

[34] डॉ. राम रतन प्रसाद, 2014, आदिवासी लोकगीतों की संस्कृति, पृ.सं. – 17

- उनके उल्लासमय गीतों में सामाजिकता में एकता एवं सहयोगिता का स्वर सुनाई देता है
- जन्म संस्कार, विवाह समारोह, मरण संस्कार एवं धार्मिक समारोह के माँगलिक अवसर पर लोक गीतों का महत्व दिखाई पड़ता है।
- यदि लोक साहित्य संस्कृति की आत्मा है तो लोक गीत लोक साहित्य की आत्म है।

4.2. कोंध आदिवासी समाज में प्रचलित लोकगीत

लोक गीत लोक साहित्य का एक अभिन्न अंग है। ओड़िया के कोंध समुदाय द्वारा अलग-अलग मौसम में तरह-तरह के गीत गाये जाते हैं। लोक गीतों के विश्लेषण की सुविधा हेतु उनका वर्गीकरण करना अपरिहार्य है। लोक गीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है। यथा-

1. विवाह गीत
2. प्रेम गीत
3. महिलाओं के गीत
4. शिकार गीत
5. बच्चों के गीत
6. पति-पत्नी के गीत
7. भाई बहन के गीत
8. देवी-देवताओं के गीत
9. राजनीतिक गीत आदि।

वर्गीकरण के साथ-साथ विस्तार से विश्लेषण भी किया गया है।

4.2.1. विवाह के गीत

मानव जीवन में विवाह एक महत्वपूर्ण प्रथा एवं संस्कार है। कोंध आदिवासी समुदाय में तरह-तरह की विवाह पद्धतियाँ प्रचलित हैं। कोंध आदिवासियों का अपने सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह संपन्न होता है। उस दौरान पुरुष एवं महिलाएँ गीतों के माध्यम से दुल्हन की विदाई देते हैं। विदाई के दौरान परिवार के सदस्य भावुक हो जाते हैं, और उनकी आँखों से आँसू भी टपकते हैं। इस संदर्भ में महिलाएँ अपनी व्यथा को गीतों के सहारे सस्वर व्यक्त करती हैं। कुल नौ विवाह गीत नीचे प्रस्तुत हैं।

इल्लु सिंब्रा माली आयीने।
जागा सिंब्रा माली आयीने।।
ताड़ि गेला मो माली औशागा मो।
ओकेली होती माली बोरिए.. ।।
आंगेणी होती माली बोरिए।
नेलता हाचि माली बोरिए।।
काढाता हाचिमाली बोरिए।
ताड़िगेला मो माली औशागा मो।।
एनिनी पिशाना माली हाजादे।
एनिनी वाणि माली आया दे।।
ताड़ि गेला मो माली औशाग मो... ।
ओंडा चिचि मालि बोरिए।।
जुरु उटि माली बोरिए।
ताड़ि गेला मो माली औशागा मो।। (गीत - 1)

शब्दार्थः- इल्लु – घर, माली - दुल्हन, बोरिए- साथ रहना, सिंब्रा - सुनसान, नेलता - झूम, पिशाना - छोड़कर जाना, बाणी - भूल जाना, खेती, काडाता - नदी, नेल्ला - जंगल, ओंडा - चावल, जुरू - माडुवा।

प्रसंग- जिस समय दुल्हन को घर से विदाई दी जाती है, उस वक्त इस प्रकार के गीत गाये जाते हैं। जब दुल्हन घर से निकलती है। तब उनके परिवार एवं जन सैलाब की आखों से आँसू निकल आते हैं। ऐसी स्थिति में मन के दुःख दर्द को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। अतीत में घटी सारी घटनाओं को याद करके गीत गाये जाते हैं।

भावार्थः- घर सुनसान हो रहा है। जगह भी सुनसान रही है। हम केले के गुच्छा जैसे रहते थे। गाँव में, घर में एवं कहीं बहार भी एक साथ रहते थे। नदी-झरना में एक साथ पानी लाने जेते थे। जंगल में लकड़ी, फल-फूल एवं कंद मूल आदि संग्रह करने साथ-साथ जाते थे। हम केले के गुच्छा जैसे रहते थे। कैसे माली (दुल्हन) हमें छोड़कर जा रही हो। कैसे माली हमें भूल सकती हो। खाना-पिना भी साथ-साथ करते करते थे। मिल-जुल कर रहते थे। हमारी ये मित्रता, आत्मीयता कैसे भूल सकती हो।

आदिवासी समुदाय में अलग-अलग किस्म की विवाह व्यवस्था पायी जाती है। इन समुदाय में विवाह के दौरान गीत गाना एक लंबी परंपरा रही है। इस गीत में केले के गुच्छा एक प्रतीक रूप में लिया गया है। जिस प्रकार केले पेड़ में एक रहते हैं, उस प्रकार गाँव के जन सैलाब एक रहते हैं। यथा- दुल्हन के साथ मिल-जुल कर रहना, नाचना, गीत गाना, जंगल में जाना, नदी में जाना ये सारे दृश्य गीतों में दिखाई देते हैं। इन गीतों में आदिवासी समाज की प्रेम, स्नेह, ममता, आत्मीयता आदि मानवीय भावनाएँ लक्षित होती हैं।

टाऊन तुगापाड़ी पुटींदी लांजा कुणुकु ।

कोंडा ऊरी वाडाजेंगु इस्टाम लेदू ।।

स्नानामु चेसीणे की नीरू लेदु ।

त्रिगीनेणी की रोड़ लेदु ।।

आबादाम माटा चेपा कुड्दु ।

इष्टम ले पते तिस की एलतामू ।। (गीत - 2)

शब्दार्थः- टाऊन - शहर, पुंटींदी - जन्म हुआ, कोंडा - पहाड़, नीरू - पानी, रोड लेदु - सड़क नहीं, आबादम - झूठ ।

प्रसंगः- यह गीत तेलुगु भाषा में गाया गया है । शादी से पहले लड़का लड़की को झूठे वादें करके शादी कर लिया था । लेकिन बाद में पता चला कि उनके घर की स्थिति ठीक नहीं है । लड़की के साथ हुए धोखे को महिलाएँ इस तरह गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं ।

भावार्थः- गीत में अभिव्यक्ति भाव यह है कि दुल्हन का जन्म दुगापाड़ी शहर में हुआ । लड़की को पहाड़ी अंचल में शादी करना पसंद नहीं है । उस गाँव में न नहाने के लिए पानी है, न घूमने के लिए सड़क है । झूठी बातें मत करो यदि आपकी इच्छा नहीं है तो हम दुल्हन को वापस ले जाएंगे ।

दुल्हन के पक्ष वाले महिलाएँ दूल्हे को गाली-गलौज दे कर गीत गाती हैं । इस गीत में यह प्रतीत होता है कि दुल्हन एवं दूल्हे के बीच जब पहली बार प्यार हुआ, तब उसे झूठी बातें बोल कर उसे प्रेम के जाल में फँसा लिया । इसलिए महिलाएँ उस बात को ध्यान में रख कर गीत गाती हैं । वास्तविकता यह है कि शहर में जन्म लेने वाली लड़की गाँव में रहना पसंद नहीं करती है । क्योंकि शहर का वातावरण गाँव के वातावरण से बिल्कुल भिन्न है । आज के भूमंडलीकरण का प्रभाव आदिवासियों के लोक गीतों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है ।

इची कोयू आऐ डोला कुली माँजिया प्रेजाले ।

कजा कयू आऐ डोला कुली माँजिया प्रेजाले ।।

कोयाण डोला कोयू चिंजेए ।

रांगु रांगु आदी माडे

गुडिया सुंदा आदे

केयु रेजा तुम कोया शोले चिंजेए ।

रो दिना माणे माग्या शोले ए ।

हिरे सिगु आआदे ।।

हिरे लज्जा आआड़े ।।

केयु रेजा तुम ..... ।।2।।

कड़ा मुआ गाटे सी ।

केयु मुआ गाटेती ।।

केयु रेजा तुम .... ।।2।।

काडु काडु मानेसी ।

रिंगा रिंगा मानसे ।।

केयु रेजा तुमो .... ।।2।।

केरिता निचा हिआ ।

पाकाता निचा हिआ ओ ।।

केयु रेजा तुमो ..... ।।2।। (गीत - 3)

शब्दार्थः- कोयु - मुर्गी, केयु - हाथ, डोला - वर, कुली माँजिया - चावल का दाना, सिगु - शर्म, कड़ा - पाँव, काडु - काले रंग, केरिता-पाकाता-आस-पास ।

प्रसंगः- कुटिया कोंध समाज में विवाह समारोह के अंतिम चरण में यह गीत गाया जाता है । दुल्हन एवं दूल्हे के माता-पिता या परिवार वाले गुस्से से अभिशाप या

गाली-गलौज दे दिये हैं तो उस शाप से मुक्ति पाने के लिए झरने में जाकर दुल्हन एवं दूल्हे के पैरों के नीचे मुर्गी की बलि दी जाती है। उस दौरान महिलाएँ दूल्हे के लिए अपशब्दों का प्रयोग करते हुए गीत गाती हैं।

भावार्थः- छोटी मुर्गी एवं बड़ी मुर्गी चावल नहीं खा रही है। लगता है कि जिस तरह होली का रंगा लगने पर शर्माते हो, उसी तरह तुम शादी में शर्मिंदगी महसूस कर रहे हो, इसलिए तुम्हारे हाथ से मुर्गी चावल नहीं खा रही है। तुम विकलांग हो, बंदर जैसा तुम्हारा चेहरा है, तुम कोयला जैसे काले रंग एवं दुबले-पतले हो, एक दिन भी जी नहीं सकते हो। तुम दुल्हन का हाथ छोड़ दो। हमारी दुल्हन के सामने खड़े होने की हिम्मत कैसे की है ।

कोई भी वर-वधू को शाप दे दिये होते हैं तो उनके लिए पूजा-पाठ किया जाता है, ताकि उस शाप से उनकी मुक्ति हो सकें। इसलिए उस दौरान अपशब्दों का प्रयोग किया जाता है। उनका मानना है कि जब तक वर एवं वधू के हाथों से मुर्गी चावल नहीं खाएगी तब तक पूजा-पाठ तथा गीत गाते रहते हैं। यह माना जाता है कि उनके हाथ से मुर्गा चावल खाने के बाद ही शाप से मुक्ति मिल सकती है।

वेला कारू लागटी टाइलु ताले रेजिसे।

सिनि किमु लांजेया हिरणी लेहे वइने ।।

आंगा पोंगे इनाहा नाहो

पिंडा वांडिता गुपा माने इचेरी ।।

आंगेणी मादी कालका मानू।

तोया हजाली जिरू हिलेए ।।

आंगा पोंगे इरना पिंडा वांडिता।

गुपा माने इचेरी ।।

मादी सोटु इचिकी लांजेया

मादी जागा इचिकी लांजेयो

वेला कारू ..... ।।2।। (गीत - 4)

शब्दार्थः- वेला कारू- सफेद कार, कालका- पत्थर, जिरू - सड़क, आंगा - शीरर, लांजेया - अपशब्द ।

प्रसंग- जब अमीर घर की लड़की की गरीब घर के लड़के के साथ शादी होती है, उस दौरान महिलाएँ दूल्हे को गाली-गलौज दे कर गीत गाती हैं ।

भावार्थः- सफेद रंग की कार पर दुल्हन स्टइल मारती हुई आ रही है । देखने में हिरोइन जैसी है । तुम्हारे गाँव में बड़े-बड़े पत्थर एवं चारों-ओर जंगल ही जंगल है, पैदल चलने के लिए भी रास्ता नहीं है । ऐसे गाँव में कैसे रह सकती है । बड़े घर की लड़की से शादी करने बावजूद भी तुम्हेरे बिरादरी वाले उसे मार-पीट करते हैं । लांजेया तुमे शर्म आनी चाहिए है ।

दुल्हन अपने घर में कार से घूमती थी और वैभवमय जीवन जी रही थी । कहने का तत्पर्य यह है कि एक गरीब घर का लड़का अमीर घर की लड़की से प्यार करके शादी करता है । इससे यह प्रतीत होता है कि उनके समाज में ऊँच-नीच एवं अमीर-गरीब में कोई भेद-भाव का निशान नहीं है, अतः वे मानवीय जीवन जीना चाहते हैं ।

नायुती माँगा आएते लेके ।

हाकि माँगा इंजिही पुणाती ।।

सांगा सारी माँगानी चाचाना ।

हाकी माँगा हाजा तुसपे इचेसी ।।

होंडा लेहे की डोका रेजाना हिदेरी ।

टुणका नर माणिसी की पशु हा ।।

नायुती मारेदु रेनेरी ।

टमाट खाइले खटा मो ।।

दुररु मारिबु टाटा ।

नायुती माँगा आएते लेके ।। (गीत - 5)

शब्दार्थः- नायुती माँगा - गाँव की दुल्हन, हाकी माँगा - गरीब दुल्हन, सांगा सारी - अमीर घर, नायुती मारेदु - गाँव का इज्जत ।

प्रसंगः- जब लड़की की शादी होने के बाद उसे तलाक दिया जाता है, और तलाक देने वाले परिवार में कोई शादी करता है तो उस दौरान इस प्रकार गीत महिलाएँ दुल्हन के पक्ष में गीत गाती हैं ।

भावार्थः- गाँव की गरीब लड़की को जानबूजकर शादी की थी । लेकिन बाद में उसे तलाक दे कर बड़े घर की लड़की से दूसरी शादी करते हो । तत्पश्चात उनकी सारा दहेज निकाल कर दे दिये । टुणका परिवार वालों को शादी नहीं करनी चाहिए । वे मनुष्य या पशु है, बेचारी लड़की की इज्जत लूटते हैं । टुणका परिवार वालों को शादी नहीं करनी चाहिए ।

उनके समाज में बहु विवाह प्रथा का प्रचलन है । यदि कोई अपनी पत्नी को तलाक देता है तो ऐसी स्थाति में गाँव में नियमित रूप से पँचायत बैठता है, और उस दौरान पति को सारा दहेज वापस करना पड़ता है । पति के अलावा दूसरा कोई भी दहेज छू नहीं सकता है । पति को पूरा के पूरा दहेज घर से निकाल कर देना पड़ता है । आदिवासी समाज में तलाक व्यवस्था एवं दहेज प्रथा पहले बिल्कुल

नहीं थी । किंतु आज के आदिवासी जो अपने आप को तथाकथित सभ्य कहने वालों की वजह से इस प्रकार की समस्याओं में फंस रहे हैं ।

माँ माली माग्यशोले कारामा गाटेई ।

माजा वेंडे हाइनिची इलु हिला गाटेई ।।

सांगा सारी टुणका नरेए माँची मारदु रोंडा पुणेरी ।

माबा हातेसी इंजिए हाजातुमम इचेरी ।।

नि ताइ सातुनु दारा टुंडा माचेसी ।

मा ऐरोक आमानी एली कितरी ।।

पाचा डुकुहाणा वास्का तिणिंबी किदेरी ।

टुणका नरतेकी हाजाली कुडेए

ढोंबा तओ माग्य शोला आंडना चिंजेरी ।। (गीत- 6)

शब्दार्थ- कारामा गाटेई - गरीब लड़की, इल्लु - घर, टुणका नरे - टुणका परिवार, संगासेरी - अमीर परिवार वाले ।

प्रसंगः- शादी के पश्चात किसी गरीब लड़की का दहेज के कारण तलाक हो जाता है, और उसे घर से निकला दिया जाता है । उस दौरान महिलाएँ लड़के के परिवार वालों से गीतों के जरिए लड़की की मार्मिक संवेदनाएँ व्यक्त करती हैं ।

भावार्थः- हमारी दुल्हन गरीब घर की लड़की है । वह वापस आएगी तो कहाँ जाएगी और किसके साथ रहगी है । अमीर घर वाले अच्छाई-बुराई कुछ (माँची मारेदु पुणेरी) नहीं जानते हैं । तुम्हारे पिता जी मरने के बड़े भाई ने माली (दुल्हन) को दरवाजा बंद करके मार-पीट और वह घर के बाहर रात भर रोती रही । अमीर

लोगों से शादी नहीं करनी चाहिए। उनके पास जमीन जायदाद होते हुए भी दोंब यानी (दलितों) के पास नौकर बन कर काम करते हैं।

विवाह के समारोहों में महिलाएँ दूल्हे के परिवार के लिए अपशब्दों का प्रयोग करके गीत गाती हैं। इस गीत में परिवारों की समस्याएँ, तलाक व्यवस्था एवं नारी का शाश्वत उत्पीड़न आदि विवशता गीतों के माध्यम से व्यक्त की जाती है।

बेनुती टोरू माँजी माँबुआ वाजाली पुनामे ।

रंग आया वाजा माने वेयार हिलेऐ ।।

ओंडा चिंजालिवा बोदा होची माँचेए।

तिणुमु लांजेया वाजी मानेमे ।। (गीत - 7)

शब्दार्थः- टोरू मांची - गोदाम का चावल, वाजाली - खाना पकाना , ओंड - पका हुआ खाना।

प्रसंगः- यह गीत विवाह के दौरान दुल्हन के पक्ष से बारात को गाली गलौज या अपशब्दों का प्रयोग करके महिलाएँ गाती हैं।

भावार्थः- बेनुती टोरू माँजी (पंचायत के चावल) हमें भी पकाना आता है। रंग आया सही तरह से खाना बनाना नहीं आती है। इसलिए चावल ठीक से नहीं पके हैं। खाओ लांजेया (तेलुगु के अपशब्द) हम जा रहे हैं।

अगर दूल्हे के परिवार का कोई सदस्य दुल्हन के परिवार वालों से कुछ अपशब्दों का प्रयोग करते हैं तो ऐसी स्थिति में दुल्हन को वापस घर ले जाने का अभिनय करते हैं। महिलाएँ दूल्हे को अपशब्दों का प्रयोग करके गाली-गलौज करने पर भी वधू अपमानजनक महसूस नहीं करता है। इस प्रकार के गाली-गलौज उनके परंपरा का हिस्सा माना जाता है।

जेमुलो आदे बाडारे ए ।

जेमुलो गोया बाडारे

हां जेमुलो साता आदेले

हां जेमुलो साता गोया ले ए ।।

हां हांसी गाआ ऐना लादले ।

तेला गाआ ऐने लादेले ए

इया गाई गाता लेदले

इया गोबे गाता तादेले

इया आती पाइके आदले ।।

गाडी हाजा माने आदेले ।

मुटा राजा मानी आदेले

कयु रेंदे पिला आदेले

कयु पेचे पिला आदेले ।।

जेमुलो नानू निंगेले ।

जेमुलो बयु निंगेले

एका दुंदु रेइला आदेले

एका बेंदु रेइला आदेले ।।

इया गुटु डेंगा तादेले ।

इया बांडी डेंगा तादेले

इया सुरू बोली तादेले

इया रोटा बोली तादेले ।।

हांत लेंजी गिना लादेले ।

गोडू लेदी गिना लदेले

मोरा मानी दुचु लादेले

मोरा तिनी दुचु लादेले ।।

पादार कयु लेगे लादेले ।

पादार कयु लेगा लादेले

हांसी गाआ ऐनालादेले

केनी गाआ ऐना लादेले

जेइलो नानू निंगेले

जेइलो बोइ वारीए

जेमुलो आदे बाडारे

जेमुलो गोया बाडारे ।। (गीत - 8)

प्रसंगः- डंगरिया कोंध महिलाएँ दुल्हन की विदाई के दौरान अपनी संवेदनाओं को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं ।

भावार्थः- आज से घर छोड़कर जा रही हो । माता-पिता तुम्हारे लिए रो रहे हैं । घर में माता-पिता के साथ हर्ष-उल्लास से रहती थी । अब ये हांसी-मजाक ससुराल में नहीं मिलगी । माता-पिता तुमे खेलना-कूदना सिखाए । तुम कैसे छोड़कर जा रही है । घर में समस्यओं के बारे में बिल्कुल नहीं जानती थी । किंतु ससुराल में जाकर दुःख कष्ट एवं कई प्रकार की परेशानियाँ सहन करना पड़गा । हमारी ये मित्रता, मौज-मस्ती हम कैसे भूल सकते हैं । परिवार वालों से जो स्नेह, ममता, प्यार एवं दोस्तों के साथ मौज-मस्ती की हो वो ससुराल में जाने के बाद याद करोगे।

ऐसी स्थिति में परिवार वालों एवं जनसैलाब की आँखों से आँसू टपकते हैं । उनके टपकते आँसुओं से ही दुल्हन को आशिर्वाद प्राप्त होता है, इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आदिवासी समाज की नारी पारस्परिक संबंध एवं स्नेह, ममता तथा दूसरे की पीड़ा को गीतों के माध्यम से सहानुभूति प्रकट करती हैं ।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी आदेणी कोशेमी मालिनी कोशेमे वानेमी ।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी माँगे आदे माँगे माली गो हिलेए ।।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी काडता हाचेणी नेलता हाचेणे मेस्तमी ।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी काडता हाजेले नेलता हाजेले हिओमी ।।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी ऊही माचणी तुई माचणे मेस्तमी ।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी ऊहली हिमनी, नुयाली हिआमी माँबु ।।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी आदेणी डाबा काडु बांगेरी पुसा तानेमी ।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी आदेणी डाबा काडु बांगेरी पुसा गो देंगामी

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी ऐनी सोगुता ऐनी वारता वानोमी ।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी बाला सोगुता कांगा पराबुता वादुओ ।।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी सोगु पिटवा वारा पिटओ वातेरी ।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी ओंडा तेकी जायु तेकी गों वादुओ ।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी ऐनी ओंडा ऐना जायुंग हिदेरी ।।

वधू वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी कुली ओंडा कंगा पुला गों हिनामी ।

बोरी ब्रम्हाली संदेणी कुली ओंडा कांगा पुला गों कुनामी ।

वर वाले - बोरी ब्रम्हाली संदेणी पिंगा देहे मुणका देहे गो उंडारी ।। (गीत - 9)

इस गीत में युवतियाँ का दो दल होता है । एक दल वर के पक्ष वाले और दूसरा दल वधू के पक्ष वाले ।

इसका अनुवाद हिंदी में नीचे दिया गया है ।

वर वाले - विवाह हेतु प्रस्ताव आएंगे ।

वधू वाले - हमारे पास माली (दुल्हन) नहीं है ।।

वर वाले - हम ने माली को जंगल एवं नदी में जाते वक्त देखा है ।

वधू वाले - हम माली को जंगल एवं नदी में जाने नहीं देंगे ।।

वर वाले – हम ने माली को चावल एवं माँडुवा खाते हुए देखा है ।

वधू वाले - हम माली को धान कूटते एवं माँडुवा पीचडते नहीं देखे हैं ।।

वर वाले – माली के लिए एक किलो सोना एवं मद्य लाएंगे ।

वधू वाले - हमें एक किलो सोना एवं मद्य की जरूरत नहीं हैं ।।

वर वाले – कौन से दिन तथा किस तिथि को आएँ ।

वधू वाले – बाला सोगु (बाला तिथि), कगां पराबु (पर्व) में आईए ।।

वर वाले – शादी के दिन भोज के लिए आईए ।

वधू वाले – कौन सा भोज देंगे ।।

वर वाले – धान का भात, दाल एवं सब्जी देंगे ।।

वधू वाले – हम धान का भात, दाल एवं सब्जी नहीं खाएगें ।

इस गीत में महिलाएँ दो दल हो कर गीत गाती हैं । एक दल वर वाले एवं दूसरा दल वधू वाले तथा वर वाले वधू वालों को गीतों के जरिए प्रस्ताव शादी का रखा हैं । लेकिन वधू वाले उनके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हैं । परंतु वर वाले सामाजिक रीति –रिवाजों के अनुसार तीन-चार बार जाते हैं । आखिरी बार वधू वाले शादी हेतु राजी हो जाते हैं । तत्पश्चात अपने समाज की परंपराओं के अनुसार विवाह संपन्न होता है ।

4.2.2. प्रेम गीत

कोंध आदिवासी के दांगडा-दांगडिओं के प्रेम गीत अलग किस्म के होते हैं । उनकी आँखों के इशारों से प्रेम प्रांरभ होता है । प्रेमी प्रेमिका अपनी संवेदनाओं को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं ।

सारूली हाजी मानेमी ।

सारूली निंगी मानेमा हा ।।

एनानी जिऊ माँजाजी ।

एनानी बंधु माँजजी हा ।।

हेरूनी रेची वातामी ।

काडानी गाडई वातामी हा ।।

कालुनी गुणया वातेमी ।

गुट्टनी गुणया वातमी हा ।।

बोपी एनानी जिऊ माँजाजी ।

एनानी बंधु माँजजी हा ।।

सारूली हाजी मानमी ।

सारूली निंगी मानमा हा ।। (गीत -10)

शब्दार्थः- सारूली - प्रेमिका, जिऊ - जीवन, हेरू - पहाड़, काडा - पहाड़, कालु - पत्थर, बोपी - प्रेमिका ।

प्रसंगः- यहाँ प्रेमी प्रेमिका के लिए गीत गा रहा है । प्रेमिका उससे मिलना नहीं चाहती है । प्रेमी अपनी वेदनाओं को गीतों के जरिए व्यक्त करता है ।

भावार्थः- सारूली मैं तुझे देखने आया हूँ । कैसी रहती हो क्या करती हो । नदी, झरना एवं पहाड़ों का पार करके आया हूँ । सारूली कैसी रहती हो क्या करती हो । इससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि आदिवासी समुदाय के ज्यादातर लोक गीतों में प्रेम से संबंधित संवेदनाएँ उद्वेलित होती हैं ।

ओटा माडी सोका बाडिरे दादा ।

निदी पदा डिस्क आडीरे ।।

मिंगे माने गाड़ी मेड़ा रे दादा ।

मेड़ा लागा पुयु बोंडे ए

पुयु बोंडा नादी जीवुड़े दादा

जिवु ऐना तेकी निवु ।।

बंदता मेदाना हाथी हाईनी दादा ।

जीवु पुयु बोंडा हिईने ..... ।।

गाउ तिले ओंठा होलिब दादा

देखु तिले मन जूरिब ।।

मिंगे माने गाड़ी .....।।2।। (गीत संख्या-11)

शब्दार्थः- दादा – युवक (दांगडा), जीवु - जीवन, मेड़ा - बड़े-बड़े इमारतें, पुयु - फूल, हाथी हाईनी - मारना,

प्रसंगः- इस गीत में गरीब आदिवासी स्त्री एक अमीर घर के लड़के के साथ प्रेम संबंध रखती है। जिससे गरीब लड़की अपनी प्रेम संवेदनाओं को गीत के माध्यस से व्यक्त करती है।

भावार्थः- आपके पास बड़े-बड़े भवन एवं गाड़ी है । उस बंगला में एक फूल (प्रेमिका) है। वह फूल मेरा जीवन है। मेरे जीवन में सिर्फ तुम हो, मेरे प्रियतम तुम ही हो, मेरे रग-रग में तुम बसे हो, मेरे हृदय में प्यार का घर बन गया है। मैं सागर में कूद के मर जाऊंगी लेकिन तुमसे प्यार करना कभी नहीं छोड़ सकती।

प्रेमिक कहती है, आपके पास धन-दौलत है । लेकिन मैं एक निरीह गरीब आदिवासी नारी हूँ न धन न घर है, मेरे हृदय में सिर्फ प्यार है। इसलिए मैं तुम्हारे प्रति समर्पित हूँ। अगर मुझे नजरअंदाज करोगे तो मैं अपनी जान न्यौछावर करने के लिए भी तैयार हूँ।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक निरीह आदिवासी नारी ईमानदारी से प्यार करती है । लेकिन अमीर घर का लड़का गरीब घर की लड़की को केवल उपभोग की वस्तु मात्र समझता है । इसलिए आदिवासी नारी अपनी मार्मिक वेदनाओं को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती है।

पाका प्राडति गोगा ड्रई।

उशामी तेकी ऐला आईने हा ।।

जेई सोई एयु वाकुमु ।

एयु वाक्हि सेरी शालावा आपेवा ।

काही सोई एयु वाकिआ ।।

शालावा आती सेरी मुंहे एग्रेने। (गीत -12)

शब्दर्थः- पाका प्राडति - पत्थर के नीचे, गोगा ड्रगी - गिरगिट, उशामी - गरम, एयु - पानी, शालवा - ठंडा, सोई – दोस्त ।

प्रसंगः- दो लड़के लड़की के लिए दूसरे गाँव गये हुए हैं । वह लड़की घर अंदर रह कर उन्हें देख रही है । लड़के भी युवती को देख कर बात करने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन लड़कों को बात करने से डर लग रहा है । एक लड़का लड़की से बात करने के लिए कहता है तो दूसरा मना कर देता है । ऐसी परिस्थिति में दोनों लड़के गीत के जरिए अपनी संवेदनाएँ प्रकट करते हैं ।

भावार्थः- गीत का भावार्थ इस प्रकार है । एक पत्थर के नीचे गिरगिट रही है । गरमी के कारण छट-पटाहट हो रही है । दोस्त उसके ऊपर पानी डालो । पानी डालने से ठंड़ा होगा और ठंडा होने पर गुस्से से बाहर आएगी । यहाँ पर गिरिगिट का प्रतीक लड़की है । उनके ज्यादातर लोक गीतों में प्रतीकात्मक रूप प्रतिफलित होता है ।

क्रोडा हाटा आंधारा टोरू ।

वेंजे हेडुमु सोइ वपिन दोरू ।।

वपिनी दोरू हिमिरि कंगा ।

उणिपी माने सोई डक्र बेंगा ।।

पाचा कारा कारा डक्री पारा आनेमी वपी हा ।

क्रडा हाटा आंधारा टोरू ।।

वेंजे हेडुमु सोइ वपिन दोरू।

वपिनी दोरू हिमिरि कंगा।। (गीत -13)

शब्दार्थः- हाटा - बाजार, बपि-महिला, दोरू - नाम, सोई - दोस्त, डक्रा - पति, बेंगा - भावना।

प्रसंगः- आंध्र प्रदेश में क्रोडा एक मंडी या बाजार का नाम है। जहाँ पर हफ्ते में एक बार बाजार लगता है। उस बाजार में आदिवासी युवक-युवतियाँ वनोत्पादों का संग्रह करके बेचने जाते हैं। वहाँ से कुछ सामान घर के लिए खरीद कर लाते हैं। उस दौरान बाजार में लड़कें-लड़कियों मिलन होता है, और एक दूसरे को देख कर प्रभावित होते हैं। तत्पश्चात एक दूसरे का गीतों के माध्यम से परिचय इस रूप में होता है।

भावार्थः- बाजार में जाकरलड़की का नाम एवं गोत्र पूछेंगे। उस लड़की का गोत्र हिमिरी कांगा। वह भी लड़का को ढूंढ रही है। चलो उसे बात करके आएंगे, और शादी-शुदा है कि नहीं। इस गीत में दोनों की पहली मुलाकात का परिदृश्य दिखाई पड़ता है।

वेला वेला रोंग काटाती फुंगा लेची ही माँजासी हा।

कारा काडा प्रोडी जोलता कारा काडी ही माँजसी।।

गाटेलिया पदा हिलती...

डुरा लिवा बोदा हिलेए।

काफी तावा चीनी हिलती ...

उंडालिवा बोदा होए।।

कारा काडा प्रोडी जोलता कारा काडी ही माँजसी। (गीत -14)

शब्दार्थः- कारा - धूप, वेला - सफेद, फुंगा - फूल, प्रोड़ी जोला - झरना का नाम, गाटेली - खटिया।

प्रसंगः- प्रेमी प्रेमिका के लिए अपने भाव व्यक्त करता है। इस गीत में प्रेमी अपनी प्रेमिका की सौंदर्यता को देख कर गीत गाता है।

भावार्थः- सफेद साड़ी एवं सफेद फूल पहन कर बैठी है। उस झरने के किनार पर रहती है, जहाँ बिल्कुल धूप भी लगता है। जिस प्रकार चीनी के बिना चाय अच्छी नहीं लगती है, उसी तरह तेरे बिना मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है।

आदिवासी समुदाय प्रकृति के बीच एक सूत्रता का संबंध विकसित करता है। लिहाजा उसे प्रकृति का पूजक कहते हैं। उसी प्रकृति से ही नारी के सौंदर्यबोध की पुष्टि होती है। उस निर्जन स्थान जहाँ पर बिल्कुल धूप भी नहीं लगती है।

नानु ओयेनी इंजाली नाना।

हाकी गाटसी इंजाते ए।।

क्रामा गाटसी इंजि नाना।

कुया तिमा निनु मो.. ।।

डायूँ पुटा हजाना नाना।

मुंबु लेहाना माँजा जी हा।।

एना बंधु माँजाजी निंगे।

एना जिउ माँजाजी

नि डक्रा एटी एची चाबुरी माँजाजी।। (गीत -15)

शब्दार्थः- नानू - मैं, नाना – प्रेमी, हाकी – गरीब, ड़क्रा – पति

प्रसंगः- इस गीत में गरीब घर का लड़का एवं अमीर घर के लड़की के प्रेम संबंध को दर्शाया गया है । लड़की उसे गरीब कह कर अमीर घर में शादी कर लेती है । लेकिन तत्पश्चात लड़की को महसूस होती है कि अमीर घर सुखमय जीवन नहीं हैं । इसलिए प्रेमी उस लड़की के रंग-ढंग को देख कर इस प्रकार गीत गाता है ।

भावार्थः- मैंने तुमे शादी करने के लिए प्रस्ताव रखा था । लेकिन तुमने मुझे गरीब कह कर अमीर घर के लड़के के साथ शादी की । अब तुम अमीर घर में कितना सुकून, प्रसन्नता एवं आनंद से रह रही हो । ये तुम्हारी जिंदगी है, अपने तरीके से जियो एवं मिले हुए पति के साथ हर्ष-उल्लास से जिंदगी जियो, यही मेरी कामना है । इस प्रकार अमीर वालों की सारी प्रवृतियाँ लोग गीतों में स्पष्ट रूप से उजागर होता है ।

ऐमीनी राजा गाढ़ता ।

गाटेली पाहुमु नाना मेड़ता ।।

कटवा ताड़ि नाना खाषे ए ।

वई इंजीनाना वेस्ते ए ।।

होपेली काडिदी जोलता ।

जाइ माया पुयु लेकना ।।

आमानी माँगा मानेऐ ।

नांगे सारी जोड़ु आयाने ।। (गीत -16)

शब्दार्थः- राजा गढ़ता – राजा का भवन, मेड़ा - इमारत, जलता - झरना, पुयु - फूल, आमानी माँगा - बुआ की बेटी

प्रसंगः- इस प्रकार का गीत गरीब घर का लड़का अमीर घर की लड़की के लिए गाता है ।

भावार्थः- लड़का कहता है । हपेली काढ़िदी (झरना का नाम) के किनारे पर एक राजा का भवन है । उस भवन में सुंदर लड़की मोली फूल पहन कर खटिया पर बैठी है । उसे मैं मोहब्बत करता हूँ । हमारी दोनों की जोड़ी अच्छी लगती है ।

इस गीत से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है, और उनमें अपनी इच्छानुसार मनपसंदित लड़की से शादी करने की स्वतंत्रता है । इसलिए उनके समाज में समानता एवं स्वतंत्रता भाव का परिलक्षित होते हैं ।

वाही वाही मिला नाना वाहीं मइनी ।

बिहां रेजी मिला नाना वई माइनी ।।

टंडी कोण तील माली पुलो बिनती बासना ।

पदा इम्बिगाआ हाचे नाना गाटली पासाना ।।

परामु परामु इचिरो आमा एंबेया पारिनी ।

एम्बे तेणी देहे आशाली पड़ाना डुरली आंडिनी ।। (गीत -17)

शब्दार्थः- मिला नाना - प्रेमिका, बिहां - विवाह, पुलो - फूल, गाटली - खटिया ।

प्रसंगः- यह गीत प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए गा रहा है । यहाँ लड़का प्रेमिका की मम्मी से पूछ-ताछ करके अपनी समस्याओं को व्यक्त कर रहा है ।

भावार्थः- शादियों में घूम-फिर करके आया हूँ । इसलिए बहुत थका हुआ हूँ । काकी मैं टांड़ी कोणा (गाँव का नाम) के मल्ली फूल की खुशबू (प्रेमिका) को देखने के लिए आया हूँ । काकी मल्ली फूल की खुशबू खटिया बिछा कर कहाँ गई है । मैं उसे कहाँ से ढूंढ कर वार्तालाप कर पाऊंगा । काकी कहती है, जाओ तुम ही उसे ढूंढ कर लाओ और उसे शादी कर लो ।

आदिवासी समुदाय में लड़की के परिवार के साथ प्रत्यक्ष रूप से वर्तालाप करने के लिए स्वतंत्रता है । इसलिए लड़का अपनी प्रेमिका के घर पर जाकरशादी का प्रस्ताव तय करता है । फलस्वरूप दोनों परिवारों का सहमति से औपचारिक रूप से शादी संपन्न होती है ।

मुतेली टोंडा लिणी-लिणी या
शीशा डाकिता लिणी-लिणी या
सु रिते सुरिणी पुयु या ।
हारूकु गाटेणी लाज्जा आनामी ।।
वेया पुटा रेजा अनामी ।
बेट्रा तेकी बालुपु हिलेए ।।
रोंडणे डिगिती तापुहिलेए ।
सु रिते सुरिणी पुयु या ।।
हारूकु गाटेणी लाज्जा आनमी । (गीत -18)

शब्दार्थः- सुरिणी पुयु - सुरिणी फूल, हारूकु - गहने, लाजा - शर्म

प्रसंगः- इस गीत में लड़का लड़की की सुंदरता को देख कर गीत गा रहा है ।

भावार्थः- कानों में सुरिणी फूल एवं बालों में गहने पहन कर बैठी है । उसके सौंदर्य को देख कर उससे बात करने के लिए मुझे शर्म आती है । लेकिन आज रात को किसी भी तरह लेकर जाऊंगा । आदिवासी नारी की सुंदरता फूलों एवं गहने के पहनाव से होती है ।

कप्णी ताडी पुयु पुते ।

ढोला मिला मेशाना आवा डिते ।।

दादा हिलसी इंजि आजा आवा ।

जोला लिवा आजा आवा ।।

कोशी ओरी इंजा आवा ।

इमिनी दादा इंजा आवा ।।

कप्णी ताडी पुयु पुते ।

ढोला मिला मेशाना आवा डिते ।।

पिणा हिचु वेचा आया ।

बदा हिलाती बेचा आवा ।।

कप्णी ताडी .....।।2।। (गीत -19)

शब्दार्थः- काप्णी ताड़ी पुयु – केले का फूल, दादा - बड़े भाई, आवा - भाभी

प्रसंगः- इसमें छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी यानी भाभी के लिए गीत गा रहा है ।

भावार्थः- केले का फूल पहनने वाली सुंदर भाभी मुझे देख कर ड़रती है । गाली मत देना भाभी मैं चोर नहीं हूँ । बस मैं तो तुम्हें देखने के लिए आया हूँ । यदि इच्छा नहीं है तो बाहर भी मत आना, मैं वापस चला जाऊंगा ।

आदिवासी समाज में पहले जमाने में बड़े भाई की मृत्यु होने के बाद उसकी पत्नी की छोटे भाई से शादी कर दी जाती थी । लेकिन ये परंपरा आज उनके समाज में प्रचलित नहीं है ।

4.2.3. महिलाओं के गीत

कोंध आदिवासी युवतियाँ चाँदनी रात में अपनी दांगड़ा-दांगड़ी शाला (शयन गृह) में गीतों के साथ-साथ नृत्य प्रदर्शन करती हैं । उस दौरान सारे युवक-युवितायाँ इकट्टे होते हैं।

गूडुसु गाडामा गूक्री मानी ।
पाडाणेकी से आदे पाचु ओजीने ।।
लुवु-लावा जुवु-जावा ।
पुचा मानी पुंगा बाड़तो आदे मेलू डिईने ।।
इतला ओडुता एताता ओडुता मेल्का ओचेरे ।
किई मानरे आदे बिनती विचेरे डयोरे ।। (गीत -20)

शब्दार्थः- पाचु - गीत, मेलू – मोर, पुंगा बाड़त - फूलों का बाग ।

प्रसंगः- इस गीत में मोर का प्रतीक के रूप में वर्णन किया गया है ।

भावार्थः- जिस प्रकार मोर फूलों से हरे-भरे खेत खलिहानों में काले बादल को देख कर नाचती है । उसी प्रकार हम भी चाँदनी रात में अपनी दांगड़ा दांगड़ी शाला (शयन गृह) में नृत्य प्रदर्शन करेंगे ।

आदिवासियों के लोक गीतों में जीवन की सारी अनुभूतियाँ प्रतीकात्मक रूप से उजागर होती हैं । इस गीत में मोर की तुलना युवतियों के साथ की गयी है ।

निली उली की वेला उली चाल जीबो ।
रेल गाडी ढोलया डिनसी लाउ माड़ो ।।
पुयु डाकिता कायामा दादा डिओ सरो सरो रेदोने
डेबा गिरि कयु केणेते ।

जाई ले आदे मा इजा हाना ।।

होरू रेना माडि रेना ।

माडिता माने पुयु लेना ।। (गीत -21)

प्रसंगः- इस गीत में महिलाएँ रेल गाड़ी, चिड़ियाँ एवं कुक्कुट को संबोंधित करके गीत गा रही हैं ।

भावार्थः- सुबह हो रही है । रेल गाड़ी एवं फूलों में चिड़िया की आवाज़ सुनाई दे रही है । डेबा गिरि पहाड़ से कुक्कुट की आवाज़ आ रही है । जल्दी उठो जंगल में जाकरफूल, फल एवं कंध मूल खोज कर लाएंगे ।

आदिवासी जंगल पर ही निर्भर होता है । इसलिए जंगल हो अपनी जीवन मानते हैं । आदिवासी समुदाय के लोगों का सुबह जंगलों में जाकरशाम को घर लौटना रोज का काम है । जंगल से हर किस्म की खाद्य संग्रह करते हैं । कहने का आशय यह है कि इस गीत से उनके दैनंदिन जीवन के कार्यकलापों के सार्थक भाव मुखरित होते हैं ।

आकिली पतर एडे रंग माचे ।

आबुदिया दुदिस्ते पुनि जना रूठी ।।

फुलो फुलो माली फुलो ।

फुलो पिंदी जीबा चालो चालो ।।

हस खुसिरे आमे थाए ।

गीत गाई बाकु ओंडा लोइ ।।

जीवन थीले जाको मिली मिसा खेल ।

जीवन सरि गोले सरोग शशिरे ।। (गीत -22)

शब्दार्थः- फुलो-फूल, आकुलि पतर-पत्ते, हस-खुसि - मौज-मस्ती ।

प्रसंगः- आदिवासी परस्पर मिल-जुल कर रहते हैं । ऐसी प्रवृत्तियाँ उनके लोक गीतों में प्रकट होती है ।

भावार्थः- महिलाएँ कहती हैं- जंगल में रंग-बिरंगे पत्ते पहएंगे । चलो फूल पहन कर एक साथ हर्ष-उल्लास से गीत गाएंगे । जब तक जीवन है । तब तक मिल-जुल कर रहेंगे एवं मौज- मस्ती से गीत गा कर नृत्य प्रदर्शन करेगें । जीवन का अंत हो जाने के पश्चात सब लोग स्वर्गवासी हो जाएंगे ।

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी जीव का जीवन स्थाई नहीं है, जो इस धरती में पैदा होता है । उसको आज नहीं तो कल इस धरती को छोड़ के जाना पड़ता है । वे लोग अधिकतर समय काम में व्यस्त रहने पर भी अपनी रीति-रिवाज, पूजा-विधि एवं लोक नृत्य आदि को जीवन का एक अभिन्न अंग मानते हैं । इसलिए उनका आपस में मौज-मस्ती से जीवन व्यतीत करना ही उनकी मूल प्रवृत्ति रही है ।

काडा वारी पुयु तीनी दामिणी पुयु ।
जा दादा लेका देरू दामुणी पुयु ।।
कायु णेआती मुदी मा बंदा तामेरी पुयु ।
पेड़्हला बुद्धि पुंजी मा बंदा तामेरी पुयु ।।
माहा काया लिदी मा बंदा तामेरी पुयु ।
अंगनी बाडी दिदी मा बंदा तामेरी पुयु ।।
आंगेणी मादिती कालु कोडी मा बंदा तामेरी पुयु ।
लागा गाआती कंजाहा कानु गुडि मा बंदा तामेरी पुयु ।।
काडा वाली पुयु तीनी दामिणी पुयु ।
जा दादा लेका देरू दामुणी पुयु ।।

वेचा मानी कुटिहा बंदा तामेरी पुयु ।

लागा गाआती पटिहा बंदा तामेरी पुयु ।।

काडा वाली पुयु तीनी दामिणी पुयु ।

जा दादा लेका देरू दामुणी पुयु ।।

काड़ता मानी पेहुड़ी बंदा तामेरी पुयु ।

डिइगाआती नेउडी बंदा तामेरी पुयु ।।

काडा वाली पुयु तीनी दामिणी पुयु ।

जा दादा लेका देरू दामुणी पुयु ।। (गीत -23)

शब्दार्थः- काडावारी पुयु – नदी के फूल, देरू दामिणी पुयु – बांस के फूल, दादा – लड़का (दांगड़ा)

प्रसंगः- सामान्यतः यह गीत आश्वीन एवं कार्तिक माह में गाये जाते हैं। इस गीत में महिलाएँ दो दल हो कर नृत्य करती हैं। उनमें गीतों की प्रतियोगिता होती है, और वे गीतों के माध्यम से एक दूसरे का मजाक उड़ाते हुए गाती हैं।

भावार्थः- प्रथम दल कहता है तुम्हारा चेहरा कुत्ता जैसा है। दूसरे दल उसे जवाब देते हुए कहता है कि तुम्हारा चेहरा भी बंदर जैसा है। नदी, झरने से बाँस के फूल लेकर आएंगे, और कान में फूल पहन कर कमर हिला कर गीत गाएंगे। चलो दादा नदी से फूल लेकर आएंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासी समाज में फूल पहनने की परंपरा रही हैं। इसलिए युवक-युवतियाँ का फूलों की सजावट से उनके सौंदर्य का बोध होता है। इसलिए उनके ज्यादातर लोक गीतों में फूलों का वर्णन मिलता है। यदि कोई दल गीत गाने में असमर्थ होता है तो उसे हार का सामना करना पड़ता है। इसलिए इन गीतों के माध्यम से एक दूसरे को हराने की कोशिश करते हैं।

मुस्कु मुंडा मुस्कु रेवुड़े ।

दुमु दामा रेकुले जिला रेकुले ।।

आयुदु माराम चेची को ।

नालगु वाराम चेची को ।।

को नारे को ऐरू ऐरू डेरूडि केया ।

केया माली केय वेंडिरो तिगा ।।

ऊही मानी हेनी सामाड़े ए ।

पु सी पांड़ा पीनी सामाड़े ।।

मुस्कु मुंडा मुस्कु रेवुड़े । (गीत -24)

शब्दार्थः- मुस्कु मुंडा - महुआ का पेड़, आयुदु वाराम - पाँच दिन, केया - पक्षी ।

प्रसंगः- सर्दी के मौसम में चाँदनी रात में महिलाएँ यह गीत गा कर नृत्य प्रदर्शन करती हैं ।

भावार्थः- गीत इस प्रकार झरना के किनारे पर मुस्कु मुंडा (महुआ का पेड़) में खूबसूरत फूल है, चलो चार-पाँच फूल लेकर आएंगे । उस फूल को गहने की तरह कान में पहनेंगे, जिससे हम भी पक्षी की तरह सुंदर बन जाएंगे । गीत का भावार्थ यह है कि युवतियाँ अपनी केया (पक्षी) के साथ तुलना करते हुए गीत गाती हैं । दरअसल आदिवासी लोक गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य बोध का आभास होता है । लिहाजा वे प्रकृति के सौंदर्य को लोक गीतों में प्रमुखता देते हैं ।

ऐरा बाटी ऐ पालसी फूलो ।

लगाजिबा नडिया तेलो ।।

ऐयु मिदी डे नाड़ता ।

गाली पारामु बांगेरी मेडाता ।।

हादी गिद गोरी गादी बोयाण ।

पोमा वाआ पोदा डियानो ।।

ऐरा बाटी ऐ ..।।2।। (गीत -25)

शब्दार्थः- पालसी पुलो - फूल, नडिया तेलो - नारियल तेल, नाड़ता - झरना बांगेरी मेडाता - सोने का घर ।

प्रसंगः- यह गीत सर्दी के मौसम में चाँदनी रात को महिलाएँ नृत्य करते हुए गाती हैं ।

भावार्थः- बगीचे में पालसी फूल है । चलो उस पालसी फूल को तोड़ कर लाएंगे और बालों में नारियाल का तेल लगाएंगे । सोने से बने घर में रहेंगे । पालसी फूल पहन कर मौज-मस्ती से गीत गाते हुए नृत्य करेंगे । आओ सखियों एक साथ पैरों से पैर मिला कर कंधे से कंधा मिला कर नृत्य करेंगे, आओ सखियों बाग से पालिस फूल पहन कर कदम से कदम मिला कर नृत्य करेंगे ।

सामान्यतः आदिवासी महिलाओं के लोक गीतों में फूलों का प्रयोग ज्यादा होता है । क्योंकि जब आदिवासी नारी रंग बिरंगे फूल पहनती है, तब अपने आपको सुंदर महसूस करती है । आदिवासी प्रकृति के गोद में रहता है । इसलिए उनके लोक गीतों में पेड़-पौधें, फल-फूल एवं बाग-बगीचा आदि शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है । इसलिए वे अपने दैनंदिन जीवन में फूलों को अभिन्न अंग मानती हैं ।

जोडु जोडु नारेशु तीन कोडी राशा ।

आकुले पोतोर पाणी वाणी दुवेरी

रू रूपा माली रुरु बंदा ।।

जोड़ु जोड़ु नारेश तीन कोडी राशा ।

आकुले ...।।2।। (गीत -26)

प्रसंगः- यह महिलाओं के गीत हैं । साठ जोड़ी सोना लाएंगे । कान, नाक में पहनेंगे, और कमर में पेड़ों के पत्ते पहन कर नृत्य प्रदर्शन करेंगे । जिससे हम सुंदर बन जाएंगे । आदिवासी समाज की नारी अंलकार या फूल पहनने का बड़ी शौकिन होती हैं । इसलिए उनके वेशभूषा, फूल एवं अंलकारों के पहनावे से ही उनकी पहचान होती है ।

रेकाया बाटता माचेमे ए ।

गोरीया बाटता मचेमे ए ।।

गामाया जिंजेए गारूड़ ।

वेकिया जिंजेई गारूड़ ।।

रेकाया बाटता माचेमे ए ।

गोरीया बाटता मचेमे ए ।।

तँया मारूनु चुंवालो ।

आदे कता बड़े चुंवालो ।।

बडिया मिठा पानरे ।

केली बाकु आमर मनो ।। (गीत -27)

शब्दार्थः- बाटता - बाग, गामा - पसीना, तँया मारूनु – पेड़ का नाम ।

प्रसंगः- यह गीत महिलाओं का गीत है । इस प्रकार के गीत महिलाएँ कार्य के उपरांत आराम करने के दौरान गाती हैं ।

भावार्थः- हम रेकाया बाटता (बगीचा नाम) खेत में काम करते हैं । जंगल में बकरियाँ चराएंगे, और हम वहाँ पर कठिन परिश्रम करते हैं, इसलिए बहुत पसीना निकलता है । थोड़ा सा विश्राम के लिए तयाँ मारूनु (पेड़ का नाम) के नीचे हर्ष-उल्लास से नृत्य करने करते हैं, जिससे थकावट दूर हो जाती है । इस गीत से यह प्रतीत होता है कि बाग बगीचे में आदिवासी कठिन परिश्रम करते हैं, इसलिए उनके मुख से अनायास ही संगीत उत्पन्न होता है ।

हाथी तीर- तीर प्राडेणे ।
गोडा तीर-तीर प्राडेणे ।।
हाथी तेकी माने लो रेपा गाडा ।
गोडा तेकी माने लो रेपा गाडा ।।
केकेरे गांजा कोयु ।
केकेरे पोकला कयु केर केर ।। (गीत -28)

शब्दार्थः- गांजा कोयु - मुर्गा, पोकाला कयु - मुर्गी,

प्रसंगः- यह गीत महिलाओं द्वारा गाया जाता है । इस गीत में युवतियाँ गीत गाते हुए हाथी-घोड़े का खेल खेलती हैं ।

भावार्थः- हाथी के ऊपर चढ़ के उछल-कूद कर नृत्य करेंगे । घोड़े के ऊपर चढ़ के नाचेंगे । मुर्गे की तरह आवाज़ (केकेरे को) की तरह गीत गाएँगे । इस खेल में दोनों हाथी एवं घोड़े की तरह नीचे झुकते हैं । उनके ऊपर एक युवती चढ़ती है, और गीत गाते हुए तालियाँ बजाती है ।

कातीनी लो कातीनी ताड़िया बाडती डाआनी ।

कातामु लो कातमा रिणा माची कोडे कातामु ।।

माने लो माने मिया दिना ती रिणा ।

माने लो माने मिबा दिना ती रिणा ।।

नानू लो पुणानी माया दिना ती रिणा ।

नानू लो पुणानी माबा दिना ती रिणा ।।

कातीनी लो कातीनी ताड़िया बाडती डाआनी ..2 ।

कातामु लो कातमा रिणा माची कोडे कातामु ..2।।

निनु लो डिती नेही बाबा तेकी डिती ।

निनु लो डिती नेही चिची तेकी डिती ।।

माँबुलो पुणामी नेही बाबा तेकी णिताणी ।

माँबुलो पुणामी नेही चिची तेकी णिताणी ।।

निनुलो डिती होलु पुचटिया डिती ।

निनुलो डिती मेलु पुचिटिया डिती ।।

माँबुलो पुणामी मेलु पुकेटिया डिताणी ।

माँबुलो पुणामी होलु पुकेटिया डिताणी ।।

निनुलो डिती जीवू डंगे डिती ।

निनुलो डिती ट्रना बोंडे डिती ।।

माँबुलो पुणामी जीवू डंगे डिताणी ।

माँबुलो पुणामी ट्रना बोंडे डिताणी ।। (गीत -29)

इस गीत में एक अमीर व्यक्ति एवं गरीब व्यक्ति के बीच में संवाद है जो उस संवाद को युवतियाँ गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। एक तरफ अमीर व्यक्ति के रूप में और दूसरी तरफ गरीब व्यक्ति के रूप में दो दल हो कर गीत गाते हैं। इस गीत का तात्पर्य यह है कि गरीब व्यक्ति ने अमीर व्यक्ति से ऋण लिया था। लेकिन अंत में गरीब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इसलिए उस ऋण का भार उनके बच्चों पर पड़ता है।

इस गीत में उसके वार्तालाप का संवाद मिलता है । गीत का अनुवाद इस प्रकार है ।

अमीर – तुम्हारे पिता जी ने मुझसे ऋण लिया था ।

गरीब – मैं नहीं जानता हूँ पिता जी के ऋण के बारे में ।

अमीर – यदि तुम ऋण चुकाने में असमर्थ हुए तो मैं तुम्हारी जमीन ले लूंगा ।

गरीब – यदि सचमुच ऋण है तो आप जमीन भी ले सकते हैं, लेकिन मैं नहीं जानता हूँ मेरे पिता-माता के ऋण के बारे में ।

अमीर – तुम रोटी के लिए चूल्हे के पास बैठ कर रोती थी ।

इस प्रकार के गीत से यह प्रतीत होता है कि उनमें गरीबी, भूख एवं ऋण की समस्याओं के साथ-साथ जमीनदारी व्यवस्था भी उद्वेलित होती है । भावार्थ है कि व्यक्ति गरीबी के कारण अमीर व्यक्ति से उधार लेता है । लेकिन जीवन भर ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाता है । इसलिए अंत में आत्महत्या भी कर लेता है । इसका प्रभाव उनके बच्चों पर पड़ता है । हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में होरी के माध्यम से ऋण की समस्या दिखायी गयी है । होरी की भी अंत में ऋण की वजह से मृत्यु हो जाती है । इसलिए आदिवासी लोक गीतों में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है ।

डिपा माडी डाकितो सांपु डुका त्राजा माने ।
सा - सा - सा कयु गुमेटे
उतिली बिया पटा कोडे तुंब त्रुजि माने ।।
कंबला टोटा - कोंबला टोटा ।
नाका चिची नारू पदा नारू पदा वायु नारू ।।
डेवुडी इनमिदी तुमदे ... डेवुडी माडीनी तुमदे ।
डिपातो तोडी मार्दी माने ।।

डिपा माडी डुकातो सांपु डुका त्राजा माने ।

सा - सा - सा कयु गुमेटे ।।

उतिली बिया पटा कोडे तुंब त्रुजि माने । (गीत -30)

शब्दार्थः- कयु - मुर्गा, पटा – पंछी, कंबला टोटा - संतरे का बाग ।

प्रसंगः- यह महिलाओं का गीत है । उस दौरान महिलाएँ वृत्ताकार हो कर नृत्य करती हैं ।

भावार्थः- डिपा माडी डाकिता (पेड़ का नाम) पेड़ की डालियों पर ऊल्लू एवं कयु (मुर्गा) आमने-सामने बैठे कर हर्ष-उल्लास से गीत गाते हुए नृत्य कर रहे हैं । आओ सखियों उन पक्षियों की तरह हम भी गीत गा कर नृत्य करेंगे । महिलाएँ अपने आपको पक्षियों के साथ तुलना करती हैं । पक्षी जिस प्रकार पेड़ों की डालियों पर मौज-मस्ती से नृत्य करते हैं । उस प्रकार युवतियाँ भी खुले मैदान में हर्ष-उल्लास से नृत्य करती हैं । इस गीत से यह प्रतीत होता है कि आदिवासी जंगलों के पशु-पक्षियों को अपने परिवार का हिस्सा मानते हैं । इसलिए वे अपने आपको पशु-पक्षियों के साथ तुलना करते हैं । लिहाजा उनके लोक गीतों में पेड़, पौधें एवं पशु-पक्षियों का उल्लेख प्रतीकात्मक रूप से मिलना लाजिमी है ।

टिकी टाका भूमिता ।

टिकमा डिया भूमिता ।।

हिंदे रूलेणी ता रूलेणी ।

डेंडा बाडा भूमिता ।।

डेंडमा डिया बोयाण ।

हिंदे रूलेणी ता रूलेणी ।।

टिकी टाका टिक्मा डियो ।

टिकी टाका....।।2।।

टिक्मा डक्री मुनी ।।

हेची कालु निदी यायो ।

ओला बेटा नादी ।।

ओला...।।2।। (गीत -31)

शब्दार्थः- भूमिता - भूमि, डेंडा बाडा - भिंडी का बाग ।

प्रसंगः- इस प्रकार के गीतों में महिलाएँ इकट्ठा हो कर वृत्ताकार रूप से एक दूसरे की कमर में हाथ रख कर गीत गाते हुए नृत्य करती हैं ।

भावार्थः- उपजाऊ भूमि पर कई प्रकार के बीज बोएंगे । उस बाग में भिंडी एवं मक्का के बीज बोएंगे । ज्यादा फसल की उपज होने पर बाजार में जाकरबेचेंगे छोटी बहन बड़े भैया को कहती है, भैया आप हेची कालु (मंडी का नाम) बाजार में जाईए । मैं ओला बेटा (मंडी का नाम) मंडी में जाऊंगी ।

आदिवासी जीविकोपार्जन के लिए खेती पर निर्भर होता है, और वह उपजाऊ जमीन में विविध किस्म की फसल उपज करते हैं । यदि जरूरत से ज्यादा फसल उपज होती है तो बाजार में जाकरबेचते हैं । कृषि से संबंधित गीत मिहलाएँ द्वारा गाये जाते हैं ।

पाई की डोला सेड नाहीं ।

डोंबुरू डोला सेड नाहीं

से नहीं सेडे सारूले ।।

पोडु नेलता हिली वेस्का ।

लगा गाआती ताली नेस्का ।।

पाई की डोला .... ।।2।।

साइ किला केड डिस्क रोस डोयरे ।

आणे देवी चंपा पुलो डोयरे ।। (गीत -32)

शब्दार्थः- डोला - बच्चा, डोंबुरू डोला - मेरा बेटा, पोडु - झूम खेती, वेस्का - लकड़ी

प्रसंगः- इस गीत में महिलाएँ माँ और बेटे के संदर्भ में गीत गा रही हैं।

भावार्थः- बेटा रो मत; मैं तेरे लिए जंगल से फस-चंपा फूल लेकर आऊँगी। बेटा रो मत बाजार से साईकिल एवं खिलौने लेकर आऊंगी। माँ अपने बेटा को विभिन्न उदाहरण दे कर शांत करती है। इस प्रकार के गीत से माँ और बेटे के प्रति स्नेह, प्रेम एवं वात्सल्य भाव प्रकट होता है।

जा लेकाना जा लेकाना मुयेली बोंडा जा लेकाना।
मुयेले बोंडा डंगा तो रिते कुंबरी पुयु ओ...2 ।।
शामी जालीते शामी जालीते।
वाग्येमी टोटा - वाग्येमी टोटा ।।
जाती रेको शिल्को जामी रेक।
शामी जालीते शामी जालीते ।।
वाग्येमी टोटा - वाग्येमी टोटा .. (गीत - 33)

शब्दार्थः- मुयेली बोंडा - फूल का नाम, कुंबरी पुयु - फूल का नाम।

प्रसंगः- इस गीत में महिलाएँ नृत्य के साथ-साथ गीत भी गाती हैं।

भावार्थः- आओ सखियों जंगल से मुयेली बोंडा (फूल का नाम) एवं कुंबेरी पुयु (फूल का नाम) लेकर आएंगे और केशों में एवं कानों में पहनेंगे।

आदिवासी युवतियों की खासियत यह है कि उनके प्रत्येक पर्व-त्यैहारों के साथ-साथ उनके संगीतों में फूलों का भी वर्णन मिलता है। आदिवासी नारी का सौंदर्य फूलों की सजावट से ही होता है। लिहाजा उनके ज्यादातर लोक गीतों में 'फूलों' का प्रयोग होना लाजिमी है।

4.2.4. शिकार गीत

कोंध आदिवासी की संस्कृति में शिकार एक लंबी परंपरा रही है । उनका उद्देश्य केवल वन्य प्राणी का शिकार करना नहीं बल्कि उनके जीवन का एक अभिन्न हिस्सा भी है । लिहाजा शिकार उनकी संस्कृति से जुड़ा होता है । उनके शिकार करने की विधि अलग किस्म की होती है । जिसका उनके लोक गीतों में चित्रण होता है ।

पाजि वाती जिआ तुनेमी ।

कस्का वाती पहु किनामी ।।

पुयु माड़ी पंबरेए ।

ओला बेटा जाताराओ ।।

उस्क लेयाँ पुयु लेयाँ ।

दामिणी दारा रेखा दारा

राजा दारा रेखा दारे ऐ ।।

कस्का वाती पहु किनामी ।

पोड्गु वाती जिआ तुनेमी ।।

पुयु माड़ी पंबरेए...

ओला बेटा जाताराओ ।

उस्कु लेयाँ पुयु लेयाँ

दामिणी दारा रेखा दारा

राजा दारा रेखा दारे ऐ । (गीत -34)

शब्दार्थः- पाजी – सूअर, कस्का-मुर्गी, पुयु- फुल, जिआ तुनेमी – मारना, दारा – दरवाजा।

प्रसंगः- सर्दी के मौसम में कुटिया कोंध युवतियाँ (दांगिडी) चांदनी रात में गीत गाती हैं। उस दौरान खेत-खलिहा फल- फूलों से भरे होते हैं।

भावार्थः- जंगलों की झाड़ियों में शिकार करेंगे। रस्सी से सजाकरएक छोटा-बड़ा फंदा तैयार करेंगे। सूअर मिलेगा तो मारेंगे। मुर्गी मिलेगी तो पालेंगे।

शिकार आदिवासियों के जीवन में एक अभिन्न अंग रहा है। वे शिकार करने के लिए जंगलों में जाते हैं। उनके शिकार करने की विधि भी अलग किस्म की होती है। जंगल में एक निर्दिष्ट स्थान पर रस्सी से सजाकरएक फंदा तैयार किया जाता है, जिसके अंदर धीर-धीरे वन्य प्राणी फँस जाते हैं, तत्पश्चात उसे मार दिया जाता है। लेकिन मुर्गी (कस्का) को नहीं मारते हैं। क्योंकि मुर्गी को घर में ले जाकर पालते हैं। आदिवासी समुदाय में जीवन से संबंधित हर पहलुओं का वर्णन उनके लोक गीतों में निहित होता है।

जा हाना हा ...जा हान हा ।।2।।

जा प्रेगाना कोंजा प्रेगाना

जा प्रेगा मुहु प्रेगाना।

आयाले नानुनी कोडा सामाडे ।।2।।

मायाली नानुनी कोडी सामाडे।

जा हाना हा.. जा हान हा..... (गीत -35)

शब्दार्थः- कोंजा - बंदर, जा हाना हा - चलो जाएंगे

प्रसंगः- यह एक शिकार गीत है, और यह गीत पुरुष द्वारा गाया जाता है।

भावार्थः- चलो जंगल से बंदर, सुअर, सांभर, हिरन, एवं गोहे मार कर लाएंगे । उनके जीवन में शिकार एक अभिन्न अंग रहा है । इसलिए उनके लोक गीतों में पशु-पक्षियों का वर्णन मिलता है ।

बिलेणे बिलेणी डोला ।
आंबु गोंजाना वादिमा डोला ।।
वेलु गोंजना वादिमा डोला ।
काटी ऊयुवा ताआदी डोला ।।
पोटा ऊयुवा ताआदी डोला ।
बिलेणे बिलेणी डोला ।।
आंबु गोंजाना वादिमा डोला ।
वेलु गोंजना वादिमा डोला ।।
पोदानी उंदामु इचिवा कुनेसी ।
डोला उंदामु इचिवा कुनेसी ।।
हेची तालदे कुतामु होताने ।
कोलु तोले दे कुतामु होताने ।। (गीत - 36)

शब्दार्थः- बिलेणे डोला - पति का नाम, वेलु – धनुष, पोदा – लड़की, डोला – लड़का ।

प्रसंगः- यह एक शिकार गीत है । यह गीत महिलाएँ पति-पत्नी के संदर्भ में गा रही हैं ।

भावार्थः- पत्नी अपने पति से कहती है, आप घर का काम-काज छोड़कर रोज जंगल में शिकार करने हेतु जाते हो, लेकिन शिकार में असफल ही रहते हो । एक दिन भी पशु-पक्षियों का मांस भी लेकर नहीं आते हो । बच्चों को मैं अकेली संभाल रही हूँ ।

हेची (धान पिछड़े वाला) से मारने की इच्छा होती है। कोलु (धान कूटने वाला) से भी मारने की इच्छा होती है। बच्चों का लालन-पालन मैं अकेली संभाल रही हूँ।

कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासी समाज में शिकार एक अभिन्न अंग रहा है। वे खेती-बारी छोड़कर शिकार को ही जीविका समझ लेते हैं। इसलिए पत्नी-पति के बीच झगड़ा होता रहता है।

4.2.5. बच्चों के गीत

मम्मी बच्चे को कई प्रकार के फल, फूल एवं चाँद-सितारों को संबोधित करके उनके प्रति वात्सल्य भाव लोक गीतों के माध्यम से प्रकट करती है।

छको छको माटी गाड़ी।

पोल सुंदर पोस रोख।।

गाड़ी सेड़े सुखो बोड़िया रेमुरे।

डाग्रेमी पुयु ढोड़िया रेमरे।।

काड़ा वारी पुयु तिनी दामिणी पुयु।

जा दादा लेका ना देरू दामिणी पुयु।। (गीत -37)

शब्दार्थः- माटी गाड़ी - मिट्टी से बनी हुई गाड़ी, डाग्रेमी पुयु - फूल का नाम।

प्रसंगः- यह गीत छोटे बच्चों के लिए है। गाँव के बच्चे मिट्टी से छोटी-छोटी गाड़ियाँ बना कर खेलते हैं। जब बच्चा रोता है, तब मम्मी बच्चे को उत्साहित करने के लिए इस प्रकार गीत गाती है।

भावार्थः- मिट्टी से बनी दो पहिया की छोटी-छोटी सुंदर गड़ियाँ बनाएंगे, उस गाड़ी अच्छी तरह फूलों से सजाएंगे, और झरना से तीन गुलदस्ता लेकर आएंगे। माँ गीत के माध्यम से बच्चे के प्रति आत्मीय भाव व्यक्त करती है।

बंधुके बणुलकु लामा ।

कणाका टिबु मेहमु ढ़ोला ।।

ओडु ढ़ोला ब्रिंबुटे रंजनी लो रंजनी ।

मि मामा दाशी माने राया गुमाणा पांडु ।।

टिके रश्मि बाला टिके रश्मि ।

ओस्तावाटा पिल्ला ओस्तावाटा ।।

मेरा डाकु में ओस्तावाटा ।

रामाँटे नि सांग रांडिया रा लेदु सारा लेदु ।।

बंधुके बणुलकु.....।।2।। (गीत -38)

शब्दार्थः- कणाका - आँख, पिल्ला - बच्चा, डाकु - गोद

प्रसंगः- बच्चा सोया हुआ है । इसलिए माँ बच्चे को गाना गा कर जागा रही है ।

भावार्थः- बेटा उठो आँखें खोलो, खेत में फूलों पर तितलियाँ खेल रही हैं, और सूर्य की रोशनी भी आ गयी है, और जंगल से तुम्हारे पिताजी फल लेकर आएंगे । आओ बेटा आओ मेरी गोद में आ जाओ, अगर तुम नहीं उठोगे तो तुम्हारी बड़ी बहन सारे फल खा लेगी । इस गीत का भावार्थ यह है यहाँ माँ तितलियाँ एवं सूर्य की रोशनी की ओर इशारा करते हुए बच्चे को जगा रही है । इस गीत में वात्सल्य भाव, प्रेम भावना एवं आत्मीयता के साथ-साथ प्राकृतिक सौंदर्यबोध भी लक्षित होता है ।

ऊटू ऊटू गुणका ताबला ।

ऊटू -ऊटू ताडी ताबला डंडिइ डंडीइ ।।2।। ।।

साटी गुणसा वाटिगुणसा ।

सानेरी पिंडता बोस गिस

रेपणी पिंडता बोस ओ..।।

लाऊ डुस्के लाऊडु माडा।

किना डुस्के किनाडी माडा डंडी डंडी।।

निंगे निंगे आदा बाडा।

निंगे निंगे पुंगा बाडा डंडी डंडी।।

साटी गुणसा वाटिगुणसा।

सानेरी पिंडता बोस गिस

रेपणी पिंडता बोस ओ..।। (गीत -39)

शब्दार्थः- डंडिइ डंडीइ - झूला, वाटिगुणसा – धनुष का तीर

प्रसंगः- इस गीत में महिलाएँ माँ और बेटे के संदर्भ में गा रही हैं। बेटा सोया हुआ है, और माँ उसे विभिन्न उदाहरण दे कर जगा रही है।

भावार्थः- बेटा उठो तुझे झूले में झुलाऊंगी। धनुष, तीर बना कर दूंगी। बेटा जल्दी उठो; तुझे खेत खलिहानों में घुमाऊँगी, और खेत के रंग-बिरंगे फूल दिखाऊँगी। बेटा जल्दी उठो कर आँगन में बैठो। इस प्रकार के गीतों में महिलाएँ गीत गा कर नृत्य प्रदर्शन करती हैं। इस में माँ का बेटे के प्रति वात्सल्य भाव दिखाई पड़ता है।

4.2.6. पति-पत्नी के गीत

निमाती कुली जेकाहा

सालेणी पारी माँजाने

उस्पा मानी सुनामी

हेटी पुनामी

सारूली वई मानेमी

सारूली हाजी मानेमी

निमाती कुली जेकाहा

सालेणी पारी माँजाने

उस्पा मानी सुनामी

काराता वई मानमी

क्राबी निकहा मानेमी हा..... (गीत - 40)

शब्दार्थः- सालेणी - पत्नी, मुंबु – चेहरा, कुली - धान, काराता - धूप, क्राबी – गुस्सा

प्रसंगः- आपस में झगड़ा कर पत्नी अपने घर चली जाती है । इसलिए पति इस तरह गीत गा कर पत्नी को लेकर आता है ।

भवार्थः- पति पत्नी से कह रहा है कि सारूली (पत्नी) मेरे घर वाले तुमे ढूंढ रहे हैं । इसलिए मैं कडी धूप में तुझे लेने आया हूँ । अगर घर से जल्दी बाहर नहीं आओगी तो मैं वापस चला जाऊँगा ।

इस गीत में पति पत्नी के बीच झगड़ा, तनाव आदि प्रवृत्ति देखने को मिलती है । इस गीत का तात्पर्य यह है कि आदिवासी समाज में पति-पत्नी के बीच प्रेम संबंध हो या झगड़ा हो ये सारी प्रवृत्तियाँ लोक गीतों में ही निहित होती हैं ।

मिलिती मिला माँजी ओंडा काड़िने ।

तोली डोक्रीनेकी जिऊ काडिने ।।

पाचा कारा आनेमि बोपी.ए.. ।

डक्री पारा आनमी बोपी ए ।।

किया कोडामु ओशा सामेए ।

नानू माँजा माइनी निंगे आशेए ।।

मिलिती मिला माँजी ओंड़ा काड़िने ।

तोली डोक्रीनेकी जिउ काड़िने ।। (गीत - 41)

शब्दार्थः- माँजी - चावल, डोक्री - पत्नी

प्रसंगः- ये मर्दों का गीत है किसी वजह से पति-पत्नी का तलाक हो जाता है । तब पति अपनी पत्नी को याद करके गीत गाता है ।

भावार्थः- जिस प्रकार पानी के बिना मछली रह नहीं सकती है । ठीक वैसे ही पहली पत्नी के बिना जीवन जीना भी मुश्किल है । पेड़ों के नीचे बैठ कर सोचता हूँ, पत्थर के ऊपर बैठ कर सोचता हूँ । मेरे लिए कोई इलाज नहीं है ।

इस गीत से यह प्रतीत होता है कि आदिवासी समाज में भी तलाक व्यवस्था का प्रचलन है । उनके लोक गीतों में दांपत्य जीवन की मनोवृत्तियाँ उद्वेलित होती हैं ।

प्रथम थोर मोते देखिलु ।
बार मास कस्ट पड़िलु ।।
ज्येष्ट मासरे प्रेम करिली ।
आषाढ़ मास रे विवाह हेबारू ।।
बगीचा भितरे जगी रहिलु ।
उस्पा मानी सुनामी डे मुंबु हेटी पुनामि डे ।।
प्रथम थोर मोते देखिलु ।
बार मास कस्ट पड़िलु ।। (गीत - 42)

प्रसंगः- शादी होने के पश्चात पत्नी अपनी प्रेम कहान गीतों के जरिए प्रकट करती हैं।

भावार्थः- जब पहली बार मुझे देखा था । तब से ही से प्रेम करने की कोशिश की । लेकिन मैं तुम्हारे प्यार को स्वीकार नहीं किया । तत्पश्चात एक साल तक मेरी पीछा करते रहे । अंतः मैं भी तुम्हारे प्रेम में फंस गयी, और आषाढ़ माह में शादी हुई । शादी होने के बाद घर के आंगन में इंतजार करते रहते हो ।

ये गीत दंपति की प्रेम कहानी है । यहाँ पत्नी पति को कह रही है । जब पति पहली बार मिले तब से ही प्यार कर बैठा था । किंतु पत्नी को मंजूर नहीं थी । पति ने उसे पाने के लिए बारह माह तक कोशिश की और आषाढ़ माह में शादी हुई ।

4.2.7. भाई-बहन के गीत

होरू रेचिनी वातेमि ओ मिला नाना ओ ।

गाटि रेचिनि वाते मिमा मिला नाना आ ।।

क्रिया कडता नेला कितमी मिला नाना आ ।

पियु रियाली काडा ओयाते मिला नाना आ ।।

काडा ओयाली क्रामा आतेमी मिला नाना आ ।

क्रामा आयाली राजी होतामी मिला नाना आ ।। (गीत - 43)

शब्दार्थः- मिला नाना - छोटी बहन, नेला - (झूम खेती) जहाँ पर जंगल को काट कर खेती की जाती है, उसको कुई भाषा में **'नेला'** कहते हैं । होरू - पहाड़, पियु – बारिश, काड़ा - झरना, नदी, क्रामा - गरीब, क्रिया कोड़ा – पहाड़ का नाम ।

प्रसंगः- इसमें बड़ी बहन छोटी को अपनी घर की समस्याओं के बारे में समझा रही है ।

भावार्थः- क्रिया कोड़ा जंगल में झूम की खेती किये थे । ज्यादा बारिश होने पर सारी फसल नष्ट हो गई । फसल नष्ट होने से हम गरीब बन गये, और गरीबी के कारण दूरदराज में रोजगार ढूंढने के लिए निकल गये ।

आदिवासी समुदाय के लोग जीविकोपार्जन के लिए जंगल को काट करके वहाँ फसलों की उपज करते हैं । लेकिन ज्यादा बारिश होने पर फसल नष्ट हो जाती है । जिससे मजबूर हो कर अपनी रोजी-रोटी के लिए महानगरों की ओर पलायन करते हैं । इस गीत में उनकी दीन, दरिद्र, भूख, बेरोजगारी एवं विस्थापन की समस्या अंकित होती है ।

छोटी बहन - नाना देतामु नाना देतामु दारा पादड़ी देता मो ओ ।

बड़ी बहन - नाना देतामु नाना देतामु किला बादड़ी देता मो ओ

छोटी बहन - माम्बु कुनामि माम्बु कुनामि किला बादड़ी जेचाले ।

बड़ी बहन - माम्बु कुनामि माम्बु कुनामि दारा पादड़ी जेचाले ।।

छोटी बहन - नाना देतमु नाना देतामु इया हाटि माँजाने ।।

बड़ी बहन - नाना देतमु नाना देतामु आबा हाटि मानेसे ।

छोटी बहन - माम्बु कुनामि माम्बु कुनामि इया हाटिती हाटापे ।।

बड़ी बहन - माम्बु कुनामि माम्बु कुनामि आबा हाटिती हाटापेशी ।

छोटी बहन - नाना देतमु नाना देतामु आवा हाटि माँजेने ।।

बड़ी बहन - नाना देतमु नाना देतामु दादा हाटि मानेसी ।

छोटी बहन - माम्बु कुनामि माम्बु कुनामि आवा हाटिती हाटापे ।।

बड़ी बहन - माम्बु कुनामि माम्बु कुनामि दादा हाटिती हाटापेशी ।

(गीत - 44)

प्रसंगः- यह छोटी बहन एवं बड़ी बहन की गीत है । किशोर अवस्था में बच्चे आँखों में पट्टी बाँध कर लुका-छूपी खेल खेलते हैं । उस वक्त इस प्रकार गीत गाए जाते हैं ।

भावार्थः- छोटी बहन - बहन दरवाजा खोलो ।

बड़ी बहन - मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी ।

छोटी बहन - बहन जल्दी खोलो मम्मी बुला रही है ।

छोटी बहन - बहन जल्दी खोलो पापा बुला रहे हैं ।

बड़ी बहन - नहीं मैं नहीं खोलूंगी दरवाजा ।

छोटी बहन - बहन दरवाजा खोलो भाभी बुला रही है ।

छोटी बहन - बहन जल्दी खोलो भैया बुला रहे हैं ।

बड़ी बहन - नहीं मैं नहीं खोलूंगी दरवाजा ।

छोटी बहन को बड़ी बहन दरवाजा बंद कर देती है । उस दौरान इस प्रकार गीत गा कर खेलते हैं । छोटी बहन मम्मी-पापा एवं भाई-भाभी को संबंधित करके

बहन को डराता है । लेकिन बहन दरवाजा नहीं खोलती है । भावार्थ यह है कि बच्चों के बच्चा पन्ना, खेल-कूद आदि भाव लोक गीतों में समावेश होते हैं ।

4.2.8. देवी-देवताओं के गीत

जिऊ ढांजाबो हाजामु ऐ पालु ढांजाबो हाजामु ऐ ।
सोना कुगुरे गरु ओ ऐ ।।
ऐना काजा बो इनारि ।
ऐना पूजा बो हिनारी ।।
सोना कुगुरे गरु ओ ऐ ।
ऊयु माँडाबा काकेनेरे, ।।
काडु बासाता बा काकेनेरे ।
सोना कुगुरे गरु ओ ऐ ।।
निनु वेस्तिबा कातेए,
निनु वेस्तिबा आतेए ।।
सोना कुगुरे गरु ओ ऐ ।
जागा हुंजिने इंजाते,
भूमि हुंजिने इंजाते ।।
सोना कुगुरे गरु ओ ऐ ... (गीत - 45)

शब्दार्थः- जीऊ - जीवन, पालु - दूध, काडु - शराबी, सोना कुगरु गुरु - देवता नाम

प्रसंगः- देवी-देवताओं के पूजा-पाठ के दौरान इस प्रकार के गीत गाये जाते हैं ।

भावार्थः- सोनाकुगुर मैं अच्छी जिंदगी जीना चाहता हूँ । मैं तुझे घर, शराब की बाटियों एवं प्रत्येक स्थानों में पूजा करूँगी । आप जो कहोंगे वही होगा । "सोना

कुगरु गुरु ओ ए" । धरती में भूस्खलन हो सकता है । "सोना कुगरू गुरु ओ ए" । इसलिए मैं अच्छी जिंदगी जीना चाहता हूँ ।

देवी - देवताओं की संतुष्टि के लिए इस प्रकार गीत गाया जाता है । दरअसल वे नदी - झरना, पहाड़-पर्वत एवं पेड़-पौधें तथा प्रकृति को ही देवता मान कर पूजा करते हैं ।

सोरली सापुरी साणा ।

कयाना इजी माँजाने सापुरी साणा ।।

सोरली सपुरी साणा ।

कया जलिमाँने सापुरी साणा ।।

सोरली सापुरी साणा ।

अज्ञे मानदे सापुरी साणा ।।

सोरली सापुरी साणा ।

बुलुहानेणी हिलेदे सापुरी साणा ।।

सोरली सापुरी साणा ।

आया आनी मुंडाले सापुरी साणा ।।

सोरली सापुरी साणा ।

आया द्राती मुंडाले सापुरी साणा ।।

सोरली सापुरी साणा ।

काना काते हनेंगे सापुरी साणा ।।

सोरली सापुरी साणा ।

सोरली सापुरी साणा ।।

कोयना आजी मानडे सापुरी साणा ।

सोरली सापुरी साणा ।।

ऋषी बंदाई जाया सापुरी साणा ।

सोरली सापुरी साणा ।।

कपा गोंद तींजोओ सापुरी साणा ।

सोरली सापुरी साणा... (गीत - 46)

भावार्थः- यह गीत देवी-देवताओं के लिए गाया जाता है । किसी पर्व-त्योहार के दौरान अड़ोस-पड़ोस के गाँव के युवक-युवतियाँ आते हैं, और आपस में मिल-जुल कर हर्ष-उल्लास से गीत गा कर नृत्य प्रदर्शन करते हैं । इसलिए गाँव का मुखिया पूजा विधि करता है । वह देवी-देवताओं के लिए नारियल एवं मुर्गा की बलि देता है । ताकि जो बाहर से आये हुए लड़के-लड़कियों को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे ।

4.2.9. राजनीतिक गीत

जाज आसि करी देश बुलिला रे नविन ।

देश बुली कोरी तोले हुलिला रे नविन ।।

इंजनिकी पाइ जागा नेलारे नविन ।

इंबेटिई माड़ा सागिने नविन ।।

पिसड़े किया माया लागीने नविन ।

जाज आसि करी देश बुलिला रे नविन ।।

देश बुली कोरी तोले हुलिला रे नविन। (गीत -47)

प्रसंगः- इस राजनीतिक गीत के माध्यम से महिलाएँ अपनी ससमस्याएँ व्यक्त करती हैं ।

भावार्थः- नवीन बाबु हवाई जहाज से देश-देश घूमते हैं। देश घूम कर वापस जाते हैं। लेकिन एक बार भी हमारे पास नहीं आते हैं। हम कई समस्याओं से जूझ रहे हैं, किंतु आप देश भर हवाई जाहज से घूमते हैं।

वास्तविकता यह है कि आज भी आदिवासी विविध समस्याओं से जूझ रहा है, ऐसी स्थिति में आदिवासी महिलाएँ अपने दिल के दर्द को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं।

निएती आका टाका इंदरा गांदी ए।
जाज बांडी रेची माने दामना जोडी ।।
रायगड़ा माजा माने माँजिया टोरू।
नानू कोडे कुईनिलो गोबोरे पुरो ।। (गीत - 48)

प्रसंगः- यह गीत इंदिरा गांधी के संदर्भ में गाया गया है।

भावार्थः- इंदिरा गांधी हमे पैसा देने के लिए हवाई जहाज से दामान जोडी (जगह का नाम) में आ रही है। चलो उसे पैसों से रायगोड़ गोदाम से चावल लेकर आएंगे, और दूसरे लोग कहते हैं, हम इतना दूर नहीं जा पाएंगे। जब इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री थी, शायद उस दौरान आदिवासियों को सरकार की ओर से सहायता मिलती होगी। इसलिए उनके लोक गीतों में तत्कालीन प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी के नाम का भी उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि आदिवासियों लोक गीतों में देशकाल का वातावरण भी प्रस्फूटित होता है।

4.3. कोंध आदिवासियों के लोक गीतों का विश्लेषण

प्रस्तुत प्रबंध में कोंध आदिवासियों के लोक गीतों के माध्यम से उनके जीवन एवं संस्कृति को उजागर करने का प्रयास किया गया है। लोक गीत खेत-खलिहानों तथा माँगलिक अवसरों पर सहज रूप से गाये होते हैं। लोक मानस के सहज एवं नैसर्गिक विचारों की मौखिक अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।

आदिवासियों के लोक साहित्य आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, लोक गीत लोक साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है । कोंध समुदाय के लोक गीतों में उनके अपने जीवन का उत्कृष्ट यथार्थ चित्रण होता है । अन्य आदिवासी समुदायों की भाँति कोंध समाज का लोक साहित्य मुख्यतः सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं से पूर्ण है । उनके लोक गीतों में उनकी संस्कृति, सामूहिकता, संघर्ष, रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, भाषा-बोली आदि परिलक्षित होती हैं, और उनके जीवन में आशा-निराशा, हर्ष-उल्लास, सुख-दुःख, पर्व-त्यौहार एवं रीति-रिवाज, अंध विश्वास आदि लोक गीतों में ही निहित होते हैं । लोक गीतों में मानवीय मूल्य हो या सांस्कृतिक मान्यताएँ हो प्रतीकात्मक बिंबात्मक रूप से प्रतिफलित होती हैं । समय परिवर्तन के साथ-साथ लोक मानस की चित्तवृत्तियों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है, तथा उनके लोक गीतों में भी परिवर्तन होना लाजिमी है । इस प्रकार कोंध आदिवासियों के लोक गीतों में भी परिवर्तन का रूप दिखाई पड़ता है ।

4.3.1. लोक गीतों में सामाजिकता

आदिवासियों के लोक गीत उनके समाज की सामाजिक धरोहर है । उनके लोक गीतों में मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ सामूहिकता, एवं आत्मीयता बड़ी सहजता से व्यक्त होते हैं । मानव जीवन में विवाह संस्कार का एक विशेष महत्व है। उनके समाज में अपनी मर्जी से जीवन साथी ढूँढने की स्वतंत्रता है । इसलिए एक गरीब घर की लड़की को अमीर घर के लड़के से शादी करने की स्वतंत्रता है । कोंध आदिवासियों में पारिवारिक जीवन महत्वपूर्ण रहा है । इसलिए उनके लोक गीतों में माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी का स्नेह-ममता, तथा आत्मीयता आदि के भाव लोक गीतों के माध्यम से प्रकट होते हैं । उनके लोक गीतों में पारिवारिक

संबंध एवं स्थितियाँ स्पष्ट रूप से उजागर होती हैं। परस्पर मिल-जुल कर रहना ही उनकी मूल प्रवृत्ति रही है। एक उदाहरण है।

होस खुसिरे आमे थाए।

गीत गाई बाकु ओंडा लोइ।।

जीवन थीले जाको मिली मिसा खेलो.....

गीत का भावार्थ यह है कि जब तक जीवन है, तब तक मिल-जुल कर रहेंगे और हर्ष-उल्लास से गीत गा कर नृत्य प्रदर्शन करेंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन समय में भी उनमें समानता, भाईचारा तथा स्त्री एवं पुरुष के बीच आत्म सम्मान उद्वेलित होता है। कोंध आदिवासी के लोक गीतों में प्रेमी-प्रेमिकाओं के नैतिक-अनैतिक संबंध, विडंबना एवं तनाव आदि भाव भी मुखरित होते हैं।

4.3.2. लोक गीत में स्त्री का चित्रण

आदिवासी नारी सदियों से ही शोषित होती आ रही है। आज के भूमंडलीकरण के दौर में भी आदिवासी स्त्री कई समस्याओं से जूझ रही है। आदिवासी भूख और गरीबी होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं, कोई नारी आगे बढ़ने की कोशिश भी करती है, लेकिन उनका शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषण किया जाता है। आदिवासी समाज की स्त्री अपनी संस्कृति धरोहर एवं सामाजिक मान्यताओं को बखूबी निभाती है, और स्त्री पुरुषों के बराबर काम-काज, खेल-खूद तथा मनोरंजन आदि क्षेत्रों में भी भागीदारी लेती है। नारी अपनी सारी विशेषताओं को लोक गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। जिसका उदाहरण नीचे दिया गया है-

मा ऐरोक आमानी एली कितरी ।।

पाचा डुकुहाणा वास्का तिणिंबी किदेरी।

टुणका नरतेकी हाजाली कुडेए .....

गीत का भावार्थ इस प्रकार है कि अमीर घर का लड़का गरीब नारी को दहेज की बजह से पश्चात् तलाक दे देता है। ऐसी स्थिति में नारी अपनी संवेदनाओं को गीतों के जरिए प्रकट करती है। इस प्रकार के गीतों में पारिवारिक समस्याएँ, दहेज की समस्या एवं नारी का शाश्वत उत्पीड़न आदि व्यक्त होती है।

आदिवासी नारी स्वयं को पक्षियों के साथ तुलना करती है। जिस प्रकार पक्षी जंगल में मौज-मस्ती से गीत गाते हैं, उसी प्रकार आदिवासी समाज की नारी हर्ष-उल्लास से जीवन जीना चाहती है। पुरुष प्रधान समाज में नारी सदियों से ही शोषित, उत्पीड़ित एवं उपेक्षित रही है। लिहाजा नारी की यह यंत्रणा एवं शाश्वत उत्पीड़न लोक गीतों में निहित होती है।

4.2.3. लोक गीतों में भूमंडलीकरण की छाया

आज के भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समाज अपना अस्तित्व खो रहा है। जिससे कई समस्याएँ तन उठ के खड़ी हैं। जैसे- तलाक व्यवस्था, दहेज प्रथा, पति-पत्नी के बीच तनाव, परिवारों के विघटन एवं आर्थिक समस्याएँ आदि बीमारियां फैल रही हैं, इसका प्रभाव उनके समाज तथा लोक गीतों पर पड़ता है। एक गीत उदापहरण के तौर पर देख जा सकते हैं।

वेला कारू लागटी टाइलु ताले रेजिसे।

सिनि किमु लांजेया हिरणी लेहे वइने ।।

आंगेणी मादी कालका मानू .....

इस गीत में महिलाएँ दूल्हे को गाली-गौलाज करते हुए गीत गा रही हैं। दुल्हन सफेद पर घूमती थी, देखो लांजेया (दूल्हा) हिरोईन जैसी स्टाईल मारते हुए आ रही है। इससे स्पष्ट होता है कि उनके कई लोक गीतों में कार, मोटर साईकिल, हिरोईन आदि शब्दों का प्रयोग हो रहा है।

4.3.4. प्रकृति का चित्रण

मानव प्रकृति के अनुकरण से सीखता है। इसलिए मानव एवं प्रकृति के बीच घनिष्ट संबंध रहा है। कोंध आदिवासी प्रकृति के सान्निध्य में सदियों से रह रहा है। लिहाजा प्रकृति के प्रति नैसर्गिक प्रेम रहा है, और उसने अपने आप को प्रकृति का हिस्सा माना है। लोक गीतों का साधन प्रकृति को ही कह सकते हैं। क्योंकि मानव प्रकृति को कभी भगवान मान आभार व्यक्त करता है और कभी प्रेयसी के रूप मानता है। इसलिए उनके लोक गीतों में उस प्रकृति के नदी, झरना, पेड़-पौधें, फल-फूल, पशु-पंछी, तथा सूर्य, चाँद-तारों एवं आसमान आदि का वर्णन मिलता है। इसलिए उनके लोक गीतों में प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन मिलना लाजिमी है। सामान्यतः उनके लोक गीतों की वस्तु प्रतीकात्मक, तुलनात्मक एवं वर्णनात्मक रूप से प्रतिफलित होती है।

4.3.5. जीविकोपार्जन की समस्याओं का चित्रण

आज के भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समुदाय में विस्थापन एक और बड़ी समस्या है, जिससे आदिवासियों की अस्मिता एवं अस्तित्व खतरे में है। कोंध आदिवासियों के लोक गीतों में भूख-बेरोजगारी की समस्या कूट-कूट भरी हुई है। उनके लोक गीतों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ जमीनदारों के शोषण, दमन एवं ऋण की असहनीय व्यथा का उल्लेख मिलता है।

होरू रेचिनी वातेमि ओ मिला नाना ओ।
गाटि रेचिनि वाते मिमा मिला नाना आ।।
क्रिया कडता नेला कितमी मिला नाना आ .....

यहाँ पर बड़ी बहन छोटी बहन अपनी गरीबी की समस्यओं को बारे समझा रही है, कहती हैं जंगल में हम झूम खेती करते थे। किंतु ज्यादा बारिश होने पर सारे फसल

नष्ट हो जाती थी । इसलिए मजबूर हो कर अपनी रोजी-रोटी के लिए महानगरों की ओर पलायन चले गये । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके लोक गीतों में देश-काल की परिस्थितियों का चित्रण मिलता है । उनमें मानवता के कटु यथार्थ एवं मार्मिक संवेदनाओं का चित्रण होता है । वे अपनी दीन-हीन, दरिद्रता, निर्धनता, नंगे-भूखे, बेरोजगारी एवं विस्थापन की सारी समस्याएँ गीतों के माध्यम से व्यक्त करते हैं ।

4.3. लोक कथाओं में कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं जीवन मूल्य

प्रत्येक मानव समुदाय में कई लोक कथाएँ प्रचलित हैं । दूसरे आदिवासियों की भांति कोंध आदिवासी समाज में पुरखा लोक कथाएँ कूट-कूट के भरी हुई है । कोंध आदिवासियों की लोक कथाएँ या मिथकों का आशय यह है कि विश्वदृष्टि को गहराई से समझने का प्रयत्न है । तथा लोक कथाओं के माध्यम से संसार को समझने की अंतरिक प्रक्रिया है । डॉ.राजेश श्रीवास्तव 'शंबर' लिखते हैं –

"किसी भी कथा में कथानक सबसे महत्वपूर्ण होता है । लोक कथा के दो पक्ष है आंतरिक एवं बाह्य अर्थात भाव शैली । भावनाओं से ही कथा का जन्म हुआ उसीसे धर्मगाथाओं (Myths) का भी जन्म हुआ । ये कथाएँ मनुष्य की प्राथमिक भावनाओं की ही अभिव्यक्ति थीं । सामाजिक होने के कारण इन कथाओं में उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जाने लगा जिसमें सभी की

भावनाओं की अभिव्यक्ति हो सके तथा समाज का व्यवस्थित संचालन भी संभव हो सके।'[35]

मानव दैनंदिन जीवन में कार्यकलापों में व्यस्त रहता है, और अथक परिश्रम करता है। लिहाजा इन कठिनाइयों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु अलौकिक सहारा लेता है, और मानव इस अदृश्य शक्ति को मिथकों के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसलिए उनके मुख से अनायास से लोक वाणी उमड़ उठती है।

कोंध समुदाय की लोक कथाएँ बुजुर्गों के द्वारा युवक-युवती के शयन गृह में सुनाई जाती है, तथा यदि किसी व्यक्ति का देहांत हो जाता है तो उस घर में कई प्रकार की लोक कथाएँ सुनाई जाती है, ताकि मृत व्यक्ति के घर में अकेलेपन महसूस न हो। उनके लिए लोक कथाएँ महत्वपूर्ण इसलिए है कि दैनंदिन जीवन के सारे कार्यकलापों तथा सामाजिक रीति-रिवाज, विवाह समारोह, मरण संस्कार एवं फसलों से संबंधित आदि लोक कथाओं में निहित होती है। कोंध जनों के देवी-देवता विभिन्न प्रकार होते हैं। उनका मानना है कि उनके देवी-देवता अधिक क्रोधित होते हैं। इसलिए उनको निरंतर प्रसन्न रखना अपरिहार्य मानते हैं। उनके समाज में इस प्रकार के देवी-देवताओं की लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं।

जब से मानव इस धरती पर कदम रखा तब से ही लोक कहानियाँ प्रारंभ हुई होगी । मानव का विश्वास है कि उनको बनाने वाला कोई न कोई सृष्टिकर्त्ता होगा। लिहाजा मानव मिथकों के माध्यम से समझने का प्रयास करता है। इन कहानियों के माध्यम से मानव का ज्ञान-विज्ञान, संघर्ष, एकता, संहिता एवं सामुदायिकता का चित्रण होता है। लोक-कथाओं के अंतर्गत प्रेम कथा, मनोरंजन एवं पौराणिक आदि दंत कथाएँ आदि मिलती है। इस प्रकार की लोक-कथाएँ मानव को जीवन जीने का राह दिखाती है।

[35] डॉ.राजेश श्रीवास्तव 'शंबर', लोक साहित्य, पृ.सं- 196

4.4.1. वेरियर एलविन द्वारा संकलित कोंध आदिवासियों की लोक-कथाएँ

वेरियर एलविन 'जनजातीय मिथक' (Tribal Myths of Orissa) उडिया आदिवासियों की कहानियों को संग्रहीत किया है। उन्होंने 1941 ई. से 1950 ई. तक आदिवासियों के समूह में रह कर लोक कहानियों का संग्रह के साथ-साथ उनकी जीवन-शैली, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार तथा उनकी नैतिक विचारधारा का गहराई से अध्ययन किया है। वह अपनी पूरी जिंदगी जनजातीय समूह में रह कर व्यतीत किया। जनजातियों में भाषीय भिन्नता होने पर भी कई जनजातियों में समानता पाई जाती है। वेरियर एलविन ने दक्षिण ओड़िया के अविभाजित कोरापुट, कलाहांडी, गंजाम एवं कंधमाल जिले में रहने वाले कोंड या कोंध, सांवरा, बोंड, गदबा, गोंड आदि आदिवासियों की लोक कहानियों का संग्रहीत किया। उनका कहना है कि जनजातीयों में भिन्नता होने के बावजूद उनके मिथकों में कई सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं। जनजातीय मिथकों से आध्यात्मिक दर्शन उजागर होती है। वेरियर एलविन 'जनजातीय मिथक' पुस्तक में आदिवासी लोक कथाओं के माध्यम से विश्व की सृष्टि के संबंध में अपनी अंतर्दृष्टि की प्रतिक्रिय व्यक्त करते हैं। इस पुस्तक में आदिवासियों की लोक-कथाओं में संसार का निर्माण, मानव की उत्पत्ति, मानव शरीर का बनावट, आकाश की उत्पत्ति, तारों की उत्पत्ति, सूर्य-चंद्रमा, पेड़-पौधें, कीडे-मखीड़े की उत्पत्ति एवं खाद्य पदार्थ की खोज आदि कथाओं का उल्लेख विस्तार से मिलता है। उनकी कहानियों को माध्यम से उनकी जीवन दर्शन को सही परिप्रेक्ष में देखा-परखा जा सकता है।

शोध प्रबंध के अंतर्गत वेरियर एलविन द्वारा संकलित छः लोक कहानियों को लिया गया है, और कार्यक्षेत्र के दौरान संग्रहीत पाँच लोक कहानियों को भी उजागर किया है। इन कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह उभर कर

सामने आता है कि उनमें सामान्य विशेषताएँ पाई जाती है । लेकिन समय परिवर्तन एवं भौगोलिक भिन्नता होने के कारण अलग-अलग अवधारणाएँ पाई जाती हैं। सामान्यतः वेरियर एलविन द्वारा संकलित कहानियों में लोक कथाओं के माध्यम से संसार को समझने प्रयास किया गया। किंतु कार्य क्षेत्र के दौरान संग्रहीत कुटिया कोंध की लोक कथाओं में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, जीविकोपार्जन की व्यवस्था, रीति-रिवाज एवं रहन-सहन उभर कर सामने आते हैं । उनकी लोक कथाओं के माध्यम से मानव की सामान्य विशेषताएँ तथा उनकी आंतरिक प्रतिक्रियओं को भी समझने का प्रयास किया गया है । इन कहानियों में कोंध आदिवासियों की दैनंदिन जीवन शैली, उनकी सामाजिक संरचनाएँ, उनकी अर्थ व्यवस्था, उनके रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास आदि पाए जाते हैं ।

आज का मानव सत्य कर्म को छोड़कर अन्याय, अत्याचार, चोरी-डकैती की ओर अग्रसर हो रहा है । ये कहानियाँ मानव को एक सच्चा एवं ईमादारी का रास्ता दिखाने में मदद करती हैं। इन कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि उनमें उनकी जीवन पद्धति एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ उजागर होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि बिना किसी वजह से दूसरे पर अन्याय एवं अत्याचार करेंगे तो ईश्वर खुद उस व्यक्ति को सजा देगा। इसलिए समाज में मानव को अपने कुकर्म छोड़कर एक सच्चा, ईमादार व्यक्ति बनना चाहिए है । लोक-कथा लोक साहित्य का एक अभिन्न अंग है। उनकी लोक-कथाएँ मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होती रही हैं। ऐसी लोक कथाएँ युगों-युगों से पूर्वजों के कंठ से सुनाई जाती रही हैं। उनकी लोक-कथाओं में प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के साथ-साथ उनकी पांरपारिक मान्यताएँ, भावनाएँ प्रतिफलित होती हैं। ये लोक-कथाएँ केवल मनोरंजन के लिए नहीं सुनाई जाती है, बल्कि इन कथाओं के माध्यम से जीवन जीने का राह दिखती हैं।

पुरोखों द्वारा संरक्षित लोक-कथाओं की पंरपरा भावी पीढ़ी की कंठ तक पहुँचती है। यह लोक-कथाओं की पंरपरा क्रमशः परिवर्तन होती रहती हैं। कोंध

आदिवासियों की लोक-कथाएँ काफी पुरानी हैं । उनकी लोक-कथाओं में नृत्य-संगीत है, और गीतों के माध्यम से भी लोक-कथाएँ सुनाई जाती है । इस प्रकार की कहानियों में मानवीय संबंधों की अस्मिता प्रतिबिंब होती है । तथा उनके दैनंदिन जीवन की क्रिया-कलाप लोक-कथाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है । लिहाजा आदिवासियों की जीवन दर्शन को समझने हेतु उनकी प्राचीन लोक साहित्य व लोक कथाओं को गहराई से अध्ययन करने की आवश्यक है ।

उनकी लोक-कथाओं के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान, कला-संस्कृति एवं भाषा आदि की विशेषताएँ हम समझ सकते हैं । यह कहानियाँ केवल मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि उनमें उचित शिक्षा भी प्राप्त होती है । ऐसी कहानियों में मानव विशेषताएँ झलकती है । इसलिए उनका साहित्य काफी व्यापक एवं समृद्ध रहा है । उनके समाज में कई प्रकार की लोक कथाएँ प्रचलित रही हैं, यथा- सामाजिक लोक-कथाएँ, धार्मिक लोक-कथाएँ, पशु-पंछी की लोक-कथाएँ एवं अलौकिक लोक-कथाएँ आदि ।

धार्मिक लोक-कथाओं के अंतर्गत देवी-देवताओं का पूजा-पाठ, पर्व-त्योहार आदि कथाएँ प्रचलित हैं । ऐसी लोक-कथाओं में धार्मिक मान्यताएँ उजागर होती हैं । हांलाकि उनके समाज में किसी विशेष धर्म की लोक-कथाएँ नहीं पाई जाती हैं, किंतु देवी-देवताओं के प्रति उनकी अटूट आस्था रहता है । इन लोक-कथाओं में देवी-देवताओं की महिमा एवं करुणा का भाव प्रकट होता है । उनके देवी-देवता उनकी सुखःदुख में साथ देते हैं, और उनकी सारी दुःख दर्द को दूर करते हैं । इसलिए उनके समाज में देवी-देवताओं को प्रधान स्थान दिया जाता है । इस प्रकार के कथाएँ उनके समाज में प्रचलित हैं । कोंध आदिवासी अंध विश्वास, अलौकिक शक्ति, जादू-टोना एवं भूत-प्रेत पर अटूट विश्वास रखता है । इस प्रकार के दंत कथाएँ कोंध समाज में प्रचलित हैं ।

मानव समाज का एक अभिन्न अंग है । उनके सामाजिक संरचनाएँ, कार्य-कलापों तथा नैतिक-अनैतिक भावनाएँ लोक-कथाओं में व्यक्त होती हैं । उनकी

लोक-कथाओं में सामूहिकता, एकता, संहिता एवं मानवीयता झलकती है । इस प्रकार की लोक-कथाएँ कोंध आदिवासियों के युवा गृहों में सुनाई जाती है । ऐसी कथाओं के माध्यम से युवक-युवतियों के यौन संबंध, पारिपारिक जीवन, सामाजिक नीति-नियमों के संबंधों में शिक्षा दी जाती है । उनके समाज में चोरी-डकैती की प्रवृत्ति नहीं है । वे भूख से रह जाएंगे, लेकिन चोरी नहीं करते हैं । वे कड़ी मेहनत करके जीवन निर्वाह करते हैं । इसलिए न किसी के सामने भीख माँगते है न ही चोरी करते हैं । वे अपनी मेहनत से सुखमय जीवन व्यतीत करते है । सच यह है कि उनके घरों में ताला नहीं लगया जाता है । क्योंकि उनके समाज में चोरी-डकैती प्रवृत्ति नहीं है । इन सारी प्रवृत्तियों को उनकी लोक-कथाओं में देखा जा सकता है ।

प्रत्येक आदिवासी समाज में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है । तथाकथित सभ्य समाज में नारी को यौन शोषण एवं अत्याचार किया जाता है । किंतु आदिवासी समाज में नारी की भूमिका अहम होती है । उनमें आदिवासीयत की प्रवृत्ति विद्यमान है । वह अपनी सांस्कृतिक धराहोर को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । तथा देवी-देवताओं के पूजा-पाठ के क्षेत्र में आगे रहती है । इसलिए उनकी लोक-कथाओं में नारी की ईमानदारी, कार्य-कलाप, आदर्श नारी की दिव्य गुण आदि का उल्लेख मिलता है । जाहिर-सी बात है कि आदिवासियों की कहानियाँ सत्य एवं असत्य जैसी घटनाओं पर आधारित हैं ।

कोंध आदिवासी जन्म से लेकर मृत्यु तक कई संस्कारों से बंधा होता है । लिहाजा उनकी लोक-कथाओं में संस्कृति का झलक दिखाई पड़ती है, तथा उनमें कई संस्कार भी पाया जाता है, यथा- जन्म संस्कार, विवाह संस्कार एवं मरण संस्कार आदि । इस प्रकार के संस्कारों में कई नीति-नियमों का पालन करना होता है । उनके संस्कारों के सारे तत्व लोक-कथाओं में ही निहित होते हैं । कोंध समाज कई विवाह विधियों का पालन करता है । उनमें कई प्रकार के विवाह देखने को मिलता है । यथा- अपहरण विवाह, प्रेम विवाह, परिवार द्वारा तय किया गया विवाह एवं बहु विवाह आदि ।

आज समय परिवर्तन के साथ-साथ आदिवासी अपनी पुरातन धरोहर को खोने लगा है । यह बड़ी दुखद है कि पुरखों द्वारा दिया हुआ सुसंपन्न सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित नहीं रखा जा रहा है । आज के दस साल पहले गाँवों में वाद्ययंत्रों के साथ के साथ सुर से सुर, ताल से ताल एवं तुक से तुक मिला कर कहानियाँ सुनाई जाती थी । ऐसी कहानियाँ सुनने के लिए दूर-दूर के गाँवों वाले इकट्ठे हो कर अपना सुख-दुःख आदान-प्रदान करते थे, जिससे उनमें एकता एवं सामूहिकता का भाव उत्पन्न होता था । ऐसे अवसरों पर युवक-युवतियों का मिलना-जुलना होता था। किंतु आज जैस-जैसे लोक-कथा सुनाने की परंपरा समाप्त होती जा रही है, वैसै-वैसे आदिवासी समाज की ये सारी प्रवृत्तियाँ समाप्त होती जा रही हैं।

कोंध आदिवासी अपनी प्राचीन साहित्य, जीवन दर्शन, संघर्ष एवं अन्याय-अत्याचारों को लोक-कथों के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास करता है । कोंध आदिवासियों की लोक-कथाओं की विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

- लोक-कथाओं में तत्कालीन कोंध आदिवासियों की जन-जीवन एवं संस्कृति मिलती है।
- लोक-कथाओं में धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिकता प्रतिफलित होती हैं।
- लोक-कथाओं के माध्यम से मानव की सारी प्रवृत्तियाँ एवं पशु-पंछी आदि की जानकारी प्राप्त होती है।
- कोंध आदिवासियों के लोक-कथाओं में पुरातत्व ज्ञान-विज्ञान, संस्कार, आचार-विचार एवं रहन-सहन आदि उजागर होते हैं।
- आदिवासियों की लोक-कथाओं के माध्यम से मानव सत्य एवं अहिंसा की ओर प्रेरित होता है।

4.5. निष्कर्ष

इस अध्याय में कोंध आदिवासियों के लोक साहित्य परंपराओं का अध्ययन किया गया है । उनके लोक साहित्य के अंतर्गत लोक गीत एवं लोक कथाओं का संग्रहीत करके विश्लेषण-विवेचन प्रस्तुत किया गया है । कोंध आदिवासी समाज में अगल-अलग मौसम में तरह-तरह की गीत एवं लोक-कथाएँ सुनाई जाती है । उनके समाज में कई प्रकार के लोक गीत पाए जाते हैं । कोंध आदिवासियों के लोक-गीतों में सामाजिकता, स्त्री का चित्रण, भूमंडलीकरण का प्रभाव, प्रकृति का चित्रण एवं जीविकोपार्जन की समस्याएँ आदि विशेषताएँ प्रतिफलित होती हैं । उनकी लोक-कथाएँ मानव जीवन जीने का तौर-तरीके सीखाती हैं । इन लोक गीत एवं लोक कथाओं के माध्यम से कोंध समुदाय के प्राचीन लोक संस्कृति, सामाजिक जीवन एवं रीति-रिवाज आदि का स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है । उनके लोक गीत एवं लोक-कथाओं में मानव की पीड़ा-वेदना, दुःख-कष्ट एवं हर्ष-उल्लास आदि भाव प्रकट होते हैं ।

वेरियर एलविन की पुस्तक 'जनजातीय मिथक' (Tribal Myths of Orissa) संकलित कोंध आदिवासियों की लोक-कथाएँ एवं शोधार्थी द्वारा संग्रहीत लोक-कथाएँ परिशिष्ट में शामिल की गई हैं ।

इन लोक-कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह बात उभरकर सामने आती है कि उनमें सामान्य विशेषताएँ पाई जाती है । परंतु समय परिवर्तन एवं भौगोलिक भिन्नता होने के कारण उनकी लोक-कथाओं में अलग-अलग अवधारणाएँ पाई जाती हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

कोंध आदिवासी समुदाय के साहित्य संरक्षण की चुनौतियाँ

प्रत्येक मानव समाज में किसी न किसी रूप में कई समस्याएँ विद्यमान हैं। परंतु आदिवासी समाज की समस्याएँ अन्य समाजों से भिन्न हैं। इसका मूल कारण शिक्षा है। शिक्षा मानव के नैतिक विकास में मूल साधन है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि को ध्यान में रख कर संविधान में कई प्रावधान प्रदान दिये गए हैं। किंतु आज भी निरीह आदिवासी जर्जर समस्याओं से जूझ रहा है। परंतु कतिपय आदिवासी समुदाय में शिक्षा के क्षेत्र में धीरे-धीरे जागरूकता फैल रही है।

कहा जाता है कि एक सिक्के के दो पहलू होते हैं, ठीक उसी प्रकार आदिवासियों के विकास में भी सकारात्मकता एवं नकारात्मकता है। भारत के सारे आदिवासियों की भांति ओड़िया के कोंध आदिवासी भी कठिन दौर से गुजर रहा है। ओड़िया सरकार द्वारा वहाँ के दबे कुचले सभी आदिवासियों के लिए प्रत्येक क्षेत्रों में विकास करने का प्रयास किया जा रहा है। किंतु आज कई आदिवासी समुदाय विकास की यात्रा में काफ़ी दूर रह गये हैं।

5.1. कोंध आदिवासियों की समस्याएँ

आज कोंध आदिवासी बाहर के अभिजात समाज से धीरे-धीरे संपर्क में आ रहे हैं, और उनके अंचलों में यातायात की व्यवस्था, शिक्षा की जागरूकता के साथ-साथ आर्थिक तंगी में भी आंशिक रूप से सुधार हो रहा है। लेकिन उनमें कई समस्याएँ जन्म ले रही हैं। तथा जिस संसाधन पर आदिवासी आत्म निर्भर हो कर जीवन निर्वाह कर रहा था, वहाँ पर अपना स्वामित्व समाप्त हो गया है, और उनके

जल, जंगल, जमीन उनके हाथ से छीन लिये गये हैं, जिससे आदिवासी अपनी जमीन जायदाद छोड़कर गरीबी, बेरोजगार, शोषण, दमन एवं अन्याय का शिकार बन गए हैं। उनके समाज में दो तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। पहला वह है जो सदियों से उनके साथ जुड़ी हुई है, शिक्षा की समस्या, आर्थिक समास्या एवं अंधविश्वास आदि। दूसरी समस्या वह है जो बाहर के तथाकथित सभ्य समाज से संपर्क में आने पर उनमें नयी समास्याएँ जन्म ले रही हैं, यथा- संसाधनों की समस्याएँ, भाषा की समस्याएँ, विस्थापन की समस्याएँ एवं शिक्षा की समस्याएँ आदि। जिसका निम्न में विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

5.1.1. शिक्षा की समस्याएँ

शिक्षा मानव जाति की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास की दत्तक है। मानव के विकास में शिक्षा एक रीढ़ की हड्डी के रूप में कार्य करती है । शिक्षा व्यक्ति विशेष को दूसरे समाज से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में ऐसी जनजातियाँ जो शिक्षा से वंचित रहे हैं। उनके समाज में स्वतंत्रता के पश्चात उनमें धीरे-धीरे शिक्षा की जागरूकता फैल रही है । परंतु पर्याप्त मात्रा में शिक्षा की प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया है, जिससे वह समाज आज भी शोषित, दमित, गरीबी, पिछड़ेपन एवं अंधविश्वासों से ग्रसित हैं। ओड़िया के कोंध आदिवासी समुदाय इन्हीं समस्याओं से जूझ रहे हैं। ओड़िया सरकार की ओर से आदिवासियों को शिक्षा के क्षेत्र में अवगत कराने का प्रयास किया जा रहा है । परंतु पर्याप्त शिक्षा जमीनी हकीकत तक पहुँच नहीं पा रही है, जिससे आज भी कई आदिवासी समुदाय शिक्षा से वंचित हैं। आदिवासियों के शिक्षा की विकास हेतु सरकार की ओर से उनके दुर्गम अंचलों में आवासीय प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की गयी है। किंतु वहाँ पर पर्याप्त मात्रा में बुनियादी या मौलिक शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती है। इसका मुख्य कारण शिक्षकों की कमी है। यदि शिक्षक हैं,

तो स्कूल नहीं और स्कूल हैं, तो शिक्षक नहीं है। ऐसे स्कूलों में शिक्षक महीने में एक बार आते-जाते हैं, और झूटे लेखा-जोखा करके अपना वेतन लेते हैं। गलती शिक्षक की नहीं है, बल्कि गलती सरकार की है। ओड़िया सरकार द्वारा अनियमित शिक्षकों को महीने में पंद्रह सौ से लेकर छह हजार तक वेतन दिया जाता है, जिससे शिक्षक मजबूर हो कर दूसरा धंधा करता है। इसलिए स्कूल नियमित रूप से नहीं चलता है। ऐसी स्थिति में आदिवासियों की शिक्षा का विकाश अधूरा रह जाता है।

आदिवासी बच्चों के लिए स्कूलों में हर किस्म की सुविधाएँ दी जाती हैं। किंतु वहाँ पर बुनियादी शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती है। आज सरकारी स्कूलों में आदिवासी छात्रों के लिए एक ओर बड़ी समस्या पनप रही है। उनकी अपनी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है, जिससे आदिवासी बच्चों को दूसरी भाषा सीखने में काफ़ी वक्त लग जाता है। इसलिए बुनियादी शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं, ऐसी सरकारी स्कूलों में पाठ्यक्रम के साथ-साथ खेल-कूद, नृत्य-संगीत का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। ताकि आदिवासी बच्चे हर क्षेत्रों में अपनी प्रतिभाओं के अनुसार लक्ष्य प्राप्त कर सके। सरकारी स्कूलों के गैर आदिवासी शिक्षकों के रवैया के बार में हरिराम मीणा जी लिखते हैं-

> *"आज से करीब चार दशक पूर्व प्रसिद्ध मानव-शास्त्र एलविन ने सुझाव दिया था कि इन उतपीड़ित वन-संतानों की आधुनिक सभ्यता के कथित प्रतिनिधियों से सुरक्षा की दृष्टि से यह आवश्यक है कि शिक्षा और शालाओं को आदिवासी संस्कृति, परंपरा तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ जोड़ा जाए। आज इन स्कूलों में हिंदू, मुसलमान और ईसाईयों के जो पर्वोत्सव मनाए जाते हैं, उन्हें रोका जाए। संक्षेप में, एलविन के समय में सवर्ण शिक्षक आदिवासियों को 'बर्बर' और स्वयं को 'सभ्य एवं उच्च'*

मानते थे, आज भी गैर-आदिवासी शिक्षक का मूल निवासियों के प्रति वही तिरस्कार का रवैया है।"[36]

हरिराम मीणा के कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सरकारी छात्रावास स्कूलों में हिंदुओं की पूजा पद्धतियों का अवलोकन करके हिंदु देवी-देवता तथा गणेश पूजा एवं सरस्वती की पूजा-पाठ करवाया जाता है। ऐसी पूजा-पाठ आदिवासी बच्चों के पैसों से की जाती है। यह सरकार की साजिश है कि हिंदूत्ववाद को बढ़ावा देना है। जिस आदिवासी समाज के पूजा पद्धति हिंदू पूजा पद्धति से विल्कुल इतर है, उस आदिवासी समाज के बच्चों को हिंदू देवी-देवताओं की पूजा पाठ करने हेतु मजबूर किया जाता है, जिससे आदिवासी हिंदू धर्म की ओर उन्मुख हो रहा है। इसलिए वे अपने समाज की संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। सरकारी स्कूलों में आदिवासी बच्चे रहते हैं। इसलिए वहाँ पर उनके समाज के पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज का पालन किया जाना चाहिए, जिससे आदिवासी बच्चे अपने समाज के इतिहास, पर्व-त्योहार एवं पूजा-विधिओं से अवगत हो सकेंगे और अपनी सांस्कृतिक विचाधाराओं का विकास कर सकेंगे। कुछ महत्वपूर्ण बिंदु नीचे प्रस्तुत हैं।

- आदिवासी समाज के छात्रों को हाई स्कूल पास करने के पश्चात सरकार की ओर पर्याप्त सहयोग नहीं मिल पाता है, जिससे वे आर्थिक तंगी की वजह से उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। इसलिए शहरों में पर्याप्त मात्रा में आदिवासी छात्रावासों की स्थापना करने की जरूरत है, ताकि गरीब आदिवासी बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें।
- प्रत्येक आदिवासी दुर्गम अंचलों में अधिक मात्रा में स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिए, उन स्कूलों में पर्याप्त मात्रा में शिक्षकों की भर्ती होनी चाहिए।
- सरकारी स्कूलों में बुनियादी शिक्षा के साथ-साथ खेल-कूद का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

[36] हरिराम मीणा, (2013) आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ.सं- 124

- ऐसी स्कूलों में आदिवासियों की मातृ भाषाओं के साथ-साथ दूसरी संपर्क भाषा के रूप में भी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- सरकार द्वारा शिक्षा तालिका (कैलेंडर) बनाते वक्त आदिवासी समाज के रीति-रिवाज, पूजा-विधि एवं पर्व-त्योहारों आदि माँगलिक अवसरों को ध्यान में रख कर तालिका तैयार की जानी चाहिए।
- शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रमों को प्रस्तुत के दौरान उनके समग्र सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर ध्यान देना अनिवार्य है।
- सरकार द्वारा आदिवासियों के लिए बनाई गई विशेष योजनाओं को जमीनी हकीकत तक समन्वय रूप से कार्यान्वित होने की अनिवार्यता है।

5.1.2. विस्थापन की समस्याएँ

भारत के विकास में औद्योगिक संस्थानों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। देश को आजादी मिलने के साथ ही औद्योगिकीकरण में तीव्रता आई। वे स्थान जो अब तक बेकार व अनुपयुक्त समझे जाते थे। वे भी अब महत्वपूर्ण हो उठे। वे औद्योगिक संस्थानों के लिए बहुमूल्य साबित हुए। सदियों से अपनी मान्यताओं एवं परंपराओं के अनुरूप जीवन जीने वाले आदिवासी समुदायों के सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं में परिवर्तन आने लगे, और उनके सामाजिक मूल्यों में तेजी से परिवर्तन हुआ। पहले से ही आदिवासी जमीनदार, साहूकार एवं महाजनों का शिकार हुआ। पुनः आज केवल उसका रूप बदला है। आदिवासियों के संसाधनों पर सरकार के माध्यम से विदेशों की बड़ी-बड़ी कंपनी एवं उद्योगपति अपनी गिद्ध दृष्टि लगाये हुये हैं। ऐसी स्थिति में आदिवासियों के परंपरागत जीविकोपार्जन के संसाधनों जो लगभग नष्ट होते जा रहे हैं जिससे निरीह आदिवासी भूमि हीन होकर पलायन की राह ढ़ूंढ रहा है। जहाँ आदिवासी सदियों से रहते आये हैं, यदि वहाँ से उन्हें बेदखल किया जाऐगा तो उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर खतरे में पड़ सकती है।

दक्षिण-पूर्व एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र में अधिकांश आदिवासियों के बहुल क्षेत्र हैं । इसलिए सबसे अधिक विस्थापन का दर्द भी उन्हीं आदिवासी समुदायों को भोगना पड़ा है । औद्योगिक संस्थानों के लिए जमीन अधिग्रहण कर वहाँ के मूल निवासियों को बेदखल किया गया है, जबकि कई योजनाओं के तर्कानुसार आदिवासियों का विकास आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए होना चाहिए था । परंतु ऐसा नहीं हुआ। उनसे सीधे जमीन ले ली गयी तथा उन्हें उनकी भूमि का बहुत कम मुआवजा दिया गया । जो धनराशि इन्हें जमीन के बदले मिली उसे इन्होंने अन्य कार्य में व्यय कर दी । इस प्रक्रिया में अधिकतर परिवार भूमि रहित तथा कंगाल हो कर गाँव से दूसरे स्थान पर विस्थापित होने के लिए मजबूर हो गये हैं, ऐसी स्थिति में उनकी जीवन शैली में तब्दील आना लाज़िमी है । आदिवासी क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों में उनकी भागीदारी का कोई प्रावधान नहीं किया गया है और न ही वे उन उद्योगों में रोजगार के लिए उपयुक्त साबित होते हैं । इस स्थान विशेष के आदिवासियों को प्रशिक्षित करके रोजगारों को वैकल्पिक व्यवस्था करनी चाहिए, लेकिन उनके स्थान पर गैर आदिवासियों को भर दिया जाता है । इन सब कारणों से आदिवासी विस्थापन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है । आदिवासियों को सदियों से अपने मूल स्थान से विस्थापन किया जाता रहा है । जिससे वे मजबूर होकर घने जंगलों की ओर चले गये, और गैर आदिवासियों ने उनके स्थान पर अपना आधिपत्य जमा लिया है । जो आदिवासी अपनी जमीन छोड़कर नहीं गया है । उनको अन्याय, अत्याचार सहन करना पड़ता है । उनके साथ दलितों के समान व्यवहार किया जाता है । भारत को आजादी मिलने के बाद आदिवासियों को अपनी नयी सरकार से कई प्रकार की उम्मीदें थीं, लेकिन यह नयी सरकार भी उनके लिए कुछ अलग नहीं कर पाई है । इस कॉर्पोरेटी सरकार ने आदिवासियों को चौराहे पर ला कर खड़ा कर दिया ।

विस्थापन के कई कारण होते हैं जैसे सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँध, विद्युत परियोजनाओं के लिए भूमि अधिगृहित, औद्योगिक उपक्रम के दौरान एवं राजमार्ग परियोजनाओं में प्रत्यक्ष विस्थापन नगण्य होते हैं । लेकिन आदि परियोजनाओं के

पूर्ण होने पर बाहरी लोगों के आगमन से वास्तविक विस्थापन आरंभ हो गया है,जो लंबे समय तक बंद नहीं होता है । विडंबना तो यह है कि इन विस्थापितों की समस्याओं के समाधान हेतु सरकार ने कई विकल्प के रूप में पुनर्वास या रोजगार की कोई व्यवस्था नहीं बनायी है । इससे आदिवासी बेरोजगार होकर विस्थापन के शिकार हो गये ।

आदिवासियों की अस्मिता जल, जंगल और जमीन से है । उसे प्रकृति का पुत्र भी कहा जाता है, जंगल उनका जीवन है, वे सदियों से ही जीविकोपार्जन के लिए जंगल पर ही निर्भर होते आए हैं । इसलिए उनका जंगल के बिना जीवन जीना नामुमकिन है । लेकिन आज बचे हुए जंगल को भी धीरे-धीरे नष्ट किया जा रहा है । जंगल नष्ट होने से केवल आदिवासियों को ही नुकसान नहीं । बल्कि पूरे मानव समाज खतरे में पड़ सकता है । जहाँ आदिवासी अपने जल, जंगल, जमीन का स्वयंभू था । वहीं वह अपने अस्तित्व को खोकर रोजगार की तलाश में शहरों की गंदी गलियों में भटक रहे हैं, और ईंट भट्टों, सड़क निर्माण एवं मकान निर्माण आदि कार्यों में काम करने के लिए विवश हो रहे हैं । इसलिए उनके पारंपारिक रीति-रिवाज, ज्ञान कौशल, कला एवं उनकी विश्व दृष्टि नष्ट होने के साथ-साथ उनका प्रकृति के साथ भी रिश्ता टूट रहा है, जो आदि काल से था । ऐसी स्थिति में सरकार की ओर से कई वन नीतियाँ एवं योजनाएँ बनाई गयी । किंतु ये योजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो रही है तथा ये योजना अपनी स्वार्थपूर्णता पर ही आधारित होती हैं । आदिवासी समाज के शिक्षा व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था के विकास के लिए ठोस कदम उठाए जाए । जिससे आदिवासियों के लिए विकास का मार्ग खुल सकें और इस उपभोक्तावादी संस्कृति से अपनी आदिम परंपराओं को बचाते हुए राष्ट्र निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभा सके ।

5.1.3 .भाषा की समस्याएँ

भाषा मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण इकाई है । मानव भावों का आदान-प्रदान भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है । दुनिया के प्रत्येक आदिवासियों की पहचान उनकी भाषाओं के माध्यम से होती है । भारत में कई आदिवासी भाषाएँ बोली जाती हैं । किंतु आज आधुनिकता के दौर में उनकी भाषाएँ संकट की स्थिति में जूझ रही हैं, और कई आदिवासी भाषाएँ तो समाप्त हो चुकी है । इसका मुख्य कारण आधुनिकता एवं शिक्षित आदिवासी वर्ग है । आदिवासी शिक्षित वर्ग तथाकथित मुख्यधारा में शामिल हो कर उनकी अपनी भाषा भूल जाते हैं, और दूसरी भाषा के प्रति आकर्षित हो कर उस भाषा को सीखने का प्रयास करते हैं । जिसके कारण आदिवासियों की भाषा विलुप्त होने की कगार पर है ।

ओड़िया के कोंध आदिवासियों की भाषा 'कुई' है, जो आज संकट की स्थिति में है । उनकी भाषा संस्कृति एवं परंपरा से जुड़ी हुई है । समय परिवर्तन के साथ-साथ कोंध आदिवासियों की भाषा का भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है । कोंध समुदाय के शिक्षित वर्ग रोजगार तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, और वहाँ की संस्कृति को अपना कर अपनी मौलिक भाषा को धीरे-धीरे भूल रहे हैं । वे अपनी भाषा बोलने के लिए अपमान महसूस करते हैं । आज के कोंध समुदाय के शिक्षित वर्गों की स्थिति यही है । यदि शिक्षित वर्ग ही इस प्रकार की मानसिकता रखते हैं तो हमारी भाषा की स्थिति क्या होगी और भाषा कैसे जीवित रहेगी । इसके बारे में कोंध समुदाय के प्रत्येक शिक्षित वर्गों को सोचने की जरूरत है, और अभिजात्य संस्कृति को त्याग करके अपनी प्राचीन सुसंपन्न सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने की अपरिहार्य है । ताकि आने पीढ़ियाँ अपनी संस्कृति एवं भाषाओं से परिचित हो पायेंगी ।

ओड़िया में कोंध आदिवासियों की भाषा 'कुई' को ओडिया लिपि में लिखने का प्रयास किया जा रहा है । कुई भाषा का विकास एवं संरक्षित रखने के उद्देश्य से कुई

शिक्षकों की भर्ती की गई है । लेकिन स्कूलों में कोंध आदिवासी बच्चों को कुई भाषा नहीं पढ़ाई जाती है । केवल ओडिया भाषा के माध्यम से पढ़ाई जाती है । इसलिए उन पर ओडिया भाषा का वर्चस्व रहा है, कुई भाषा में कई किताबें लिखी गई हैं । लेकिन उनकी किताबों में केवल फुलवाणी अंचल की कुई भाषा के माध्यम से लिखी गई है । इसलिए रायगडा, गजपति, कोरापुट एवं मालकानगिरि जिले में रहने वाले कोंध आदिवासी समझ नहीं पाते हैं । कहने का आशय यह है कि कुई भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है । गहन अध्ययन के पश्चात कुई भाषा का एक बृहद मानक शब्द कोश तैयार किया जाना चाहिए, जिससे कुई भाषा साहित्य में मानक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होगी । तत्पश्चात कुई भाषा की लिपि का विकास करके साहित्य लिखा जाएगा, और संविधान के 8 वीं अनुसूची में भाषा की मान्यता देने के लिए माँग की जाएगी । जिससे उनकी प्राचीन लोक संस्कृति, नैसर्गिक जीवन पद्धति एवं रीति-रिवाज को अनायास से समझ सकते हैं । इसलिए हम सबको अपनी भाषा के प्रति जागरूक होना पड़ेगा । यदि जागरूक नहीं होंगे तो आने वाले दिनों में न कोंध समुदाय बचेगा न तो उनकी भाषा बचेगी । उनकी भाषा विलुप्त होने के साथ-साथ उनके लोक साहित्य, ज्ञान विज्ञान एवं संस्कृति समाप्त हो जाएगी । इसलिए कोंध आदिवासी शिक्षित वर्गों की पहली जिम्मेदारी यह रहेगी कि उनको अपनी भाषा को बचा कर संस्कृति का विकास करना होगा ।

5.2. निष्कर्ष

इस अध्याय में कोंध आदिवासी समुदाय के साहित्य संरक्षण की चुनौतियों पर चर्चा की गई है । आज के भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समुदाय कई समस्याओं से जूझ रहे हैं । यथा- शिक्षा की समस्याएँ, विस्थापन की समस्याएँ एवं भाषा की समस्याएँ आदि मुह बाये खड़ी हैं । विस्थापन के कई कारण हो सकते हैं, जैसे- सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँध, विद्युत परियोजनाओं के लिए भूमि अधिगृहित

एवं राजमार्ग परियोजनाएँ आदि । लेकिन आदि परियोजनाओं के पूर्ण होने पर बाहरी लोगों के आगमन से वास्तविक विस्थापन आरंभ हो जाता है, जो लंबे समय तक बंद नहीं हो रहा है । विडंबना तो यह है कि इन विस्थापितों की समस्याओं के समाधान हेतु सरकार ने कई विकल्प के रूप में पुनर्वास या रोजगार की कोई व्यवस्था नहीं बनायी है, इससे आदिवासी बेरोजगार होकर विस्थापन के शिकार हो गये, जिसकी वजह से उनकी संस्कृति एवं लोक साहित्य दिन ब दिन नष्ट होने के कगार पर हैं ।

इन सारी समस्याओं की वजह से कोंध आदिवासियों की संस्कृति एवं भाषा विलुप्त हो रही है । इस संरक्षित करने की दिशा में पहल करने की बड़ी प्रासंगिकता है । यह केवल उन आदिवासी समुदाय द्वारा ही नहीं, अड़ोस-पड़ोस तथा कथाकथित सभ्य समाज, सरकारी नीतियाँ भी इस दृष्टि से अनुकूल बनें तो इन चुनौतियों के लिए समाधान निकलपाना संभव है।

*****

छठा अध्याय

उपसंहार

भारत विविध सांस्कृतियों का देश रहा है और है । यहाँ पर अलग-अलग जनजातियाँ एवं विविध संप्रदाय के लोग निवास करते हैं । भारत एक विकासशील देश है । आज भी यहाँ की कई जातियाँ विकास के दायरे में नहीं पहुँच पाई हैं । ये जातियाँ संक्रमण के दौर से गुजर रही हैं, जिन्हें 'आदिवासी' या 'अनुसूचित जनजातियों' के नाम से जाना जाता है । इस शब्द से स्पष्ट हो जाता है कि जो जंगल एवं पहाड़ों में प्रकृति के साथ साहचर्य स्थापित करके जीवन निर्वाह करते आये हैं, उन्हें ही यह नाम दिया गया है । दुर्गम क्षेत्रों में निवास करने कारण वे अन्य तथाकथित सभ्य समाज से दूर रहे हैं । लिहाजा वे विकास की यात्रा में काफ़ी पीछे रहे गये । इन सभ्य समाज से कटने के बावजूद जनजातियों की अपनी विशिष्ट संस्कृति, रहन-सहन, वेशभूषा, रीति-रिवाज एवं भाषा आदि उन्हें अलग पहचान दिलाती हैं ।

इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य कोंध आदिवासियों की लोक संस्कृति और साहित्य के विविध आयामों का अध्ययन करना था । इसके तहत कोंध आदिवासी समाज में प्रचलित लोक गीतों का संग्रह, उनका विवेचन-विश्लेषण आदि शामिल किया गया है । लोक गीतों के अनुशीलन के कार्य को सुगम बनाने क्रम में कोंध आदिवासियों की लोक संस्कृति को भी बेहतर ढंग से समझने के लिए उनके समाज, संस्कृति के विविध आयामों का अध्ययन भी किया गया है । विभिन्न संदर्भ स्रोतों और स्वानुभव के आधार पर यह अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् यह महसूस किया कि काफ़ी हद तक शोध कार्य के उद्देश्य को पूरा करने में सफलता हासिल की गई है ।

इस शोध कार्य में विभिन्न अनुसंधान प्रविधियों का अनुसरण किया गया है।

अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषणः-

कोंध आदिवासियों के लोक गीत लिखित रूप से अनुपलब्ध हैं, लेकिन मौखिक रूप से विद्यमान हैं। उनका संग्रह करके इस शोध कार्य में उनके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अन्वेषण करते हुए वर्तमान में उन गीतों की उपयोगिता को देखने का प्रयास किया गया है। जिनको इस शोध अध्ययन के अंतर्गत प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग हुआ है

उपलब्ध तथ्यों या सिद्धांतों का अन्वेषणः-

उपलब्ध तथ्यों या सिद्धांतों के अन्वेषण से कोंध आदिवासियों के संबंधित उपलब्ध सामग्री का गहराई से अध्ययन हो पाया है, और तत्पश्चात् कुछ नवीन आख्यान भी उभर कर सामने आए हैं।

विश्लेषणात्मक शोध प्रविधिः-

शोध के प्राथमिक स्रोत संग्रहीत करके लोक गीतों, लोक कथाओं, परंपराओं एवं उनकी लोक संस्कृति का सैद्धांतिक विश्लेषण किया गया है।

वर्णनात्मक शोध प्रविधिः-

कोंध आदिवासियों के गीतों का विश्लेषण करते वक्त अर्थ या भावों को समझाने में कठिनाई होती है। इसलिए वर्णनात्मक प्रविधि अपनायी गयी है।

भारत के आदिवासी विविध हिस्सों में बंटे हुए हैं । लेकिन उत्तर पूर्व राज्यों में सबसे अधिक आदिवासी हैं । आदिवासियों को आमतौर पर गिरिजन, देशज, जंगली, बर्बर, दस्यु, राक्षस, असुर आदि नामों से अभिहित किया जाता है। उनमें विशेष भौगोलिक परिवेश, जलवायु एवं पर्यावरणीय वातावरण की वजह से विभिन्नता पाई जाती है। उनके रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, पूजा-विधि, भाषा की विभिन्नता एवं सामाजिक

संरचनाओं में भी भिन्नता है। लेकिन उनकी सामाजिक संरचना एवं धार्मिक मान्यताओं में सामान्य विशेषताएँ भी पाई जाती हैं।

ओड़िया में सबसे अधिक कोंध आदिवासी निवास करते हैं। दक्षिण ओड़िया के कोंधमाल, रायगड़ा, कलाहांडी, कोरापुट, मालकनगिरि एवं गजपति आदि जिलों में उनका निवास स्थान है। आदिवासियों में वैसे तो जाति की अवधारणा नहीं है। लेकिन कोंध आदिवासियों में भी अन्य आदिवासियों की तरह उपजातियाँ हैं, जैसे-कुटिया कोंध, डंगोरिया कोंध एवं देसिया कोंध आदि। यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह उपजाति मुख्यधारा के समाज की जाति व्यवस्था जैसी बिल्कुल नहीं है। क्योंकि इन उपजातियों में कोई भेद-भाव नहीं है।

कोंध आदिवासी अपने पारंपरिक ज्ञान कौशल का प्रयोग करके गृहों का निर्माण करते हैं। लेकिन आज के समय में भारी बदलाव होने के कारण ऐसे पुराने घर कम मात्रा में देखने को मिलते हैं। क्योंकि सरकार की सहायता से विभिन्न आवास योजनाओं के तहत पक्का घर दिए जा रहे हैं, और कई लोग अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पक्का घर बनवा रहे हैं। कोंध समुदाय जीविकोपार्जन हेतु जंगल पर निर्भर होता है। जंगल से वे विविध फल-फूल, कंदमूल आदि जंगली पदार्थ संग्रह करके जीवन निर्वाह करते हैं। उनकी संस्कृति में शिकार एक लंबी परंपरा रही है। शिकार पर जाने से पहले गाँव के इष्ट देवता 'जाकेरी पेन्नु' (धरणी पेन्नु) की पूजा की जाती है। तत्पश्चात वे जंगल में शिकार के लिए निकलते हैं। शिकार करने की उनकी कई विधियाँ हैं, जिनका प्रयोग वे शिकार में करते हैं। कुत्ते को भी शिकार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। शिकार करने पश्चात गाँव वापस आकर सबसे पहले 'जाकेरी पेन्नु' (देवता) को शिकार का खून अर्पित किया जाता है। लिहाजा कोंध आदिवासियों के जीवन में शिकार एक

अभिन्न अंग रहा है। किंतु आज के आधुनिक दौर में यातायात की व्यवस्था एवं बड़े-बड़े कॉर्पोरेट कंपनियाँ खड़ी होने की वजह से उनके जंगल धीरे-धीरे नष्ट होने के कगार पर हैं, और वहाँ के जंगली प्राणी भी विलुप्त हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में कोंध आदिवासियों के शिकार की परंपरा भी लगभग समाप्त हो चुकी है।

कोंध आदिवासी समाज का अपना सामाजिक नीति-नियम होता है। उनके समाज में गोत्रों की व्यवस्था पाई जाती है। अपने सम गोत्र में विवाह करना निषेध है। उनका मानना है कि स्वगोत्र वाले भाई-बहन एवं एक ही वंशानुक्रम के हैं। इसलिए वे दूसरे गोत्र के साथ विवाह करते हैं। उदाहरण के तौर पर मांडागी परिवार के गोत्र वाले पुआला गोत्र वालों से शादी कर सकते हैं। यदि उनके समाज में कोई सामाजिक नीति-नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है, या उन्हें कड़ी सजा दी जाती है। शोध अध्ययन से यह देखने को मिलता है कि उनके समाज में आज भी अपनी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था विद्यमान है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कारों से बंधा होता है। यथा- जन्म संस्कार, विवाह संस्कार एवं मरण संस्कार आदि। शोध के माध्यम से कोंध आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्थाओं पर गहन अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि उनके समाज में अपनी मर्जी से जीवन साथी ढूंढने की स्वतंत्रता है। इसलिए एक गरीब घर की लड़की अमीर घर के लड़के से शादी करने की अधिकारी है। इससे यह पता चलता है कि उनमें भेद-भाव का नामों-निशान नहीं है, अतः वे आपस में स्नेह-ममता, एकता-समानता तथा आत्मीयता के साथ जीते हैं। परस्पर मिल-जुल कर रहना ही उनकी मूल प्रवृत्ति रही है।

कोंध आदिवासियों की भाषा 'कुई' है। जिसका संबंध द्रविड़ परिवार से है। कुई भाषा में दो प्रकार की बोलियाँ 'कुई' एवं 'कुवी' हैं। कुई बोली फुलवाणी, कलाहांडी एवं गजपति जिलों में बोली जाती हैं। कुवी मुख्यतः

कोरापुट, रायगड़ा एवं गजपति जिलों में बोली जाती है। कुई भाषा एवं द्रविड़ परिवारों के अंतर्संबंध से यह प्रतीत होता है कि द्रविड परिवार के कई शब्द कुई भाषा में मिलते हैं। इसलिए कुई भाषा में द्रविड भाषा का प्रभाव रहा है। द्रविड़ परिवार की भाषा एवं कुई भाषा के संबंध में आगे विस्तार से शोध की बड़ी संभावना है।

कोंध आदिवासी समाज के लोक साहित्य में लोक गीत, लोक कथाएँ, कहावतें एवं परंपराएँ आदि मौखिक रूप से विद्यमान हैं, जो सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होती रही हैं। यह साहित्य भावी पीढ़ी को अपना उत्कृष्ट विचार अभिव्यक्त करता है। शोध अध्ययन के दौरान कोंध आदिवासियों के कई लोक गीत एवं कुछ लोक-कथाएँ संग्रहीत करके विस्तार से विश्लेषण करने का प्रयास हुआ है। उनके लोक गीतों को कई भागों में बांटा गया है। यथा-विवाह गीत, महिलाओं के गीत, प्रेम गीत, शिकार गीत, देवी-देवताओं के गीत, बच्चों के गीत एवं राजनीतिक गीत आदि। वे खेत खलिहानों तथा मांगलिक अवसरों पर गीत गाते हैं। उनके समाज में गीत गाने की लंबी परंपरा रही है। उनके गीतों में जन मानस की नैसर्गिक विचार, जीवन शैली एवं संस्कृति सहज रूप से अभिव्यक्ति होती है। उनके रहन-सहन, खान-पान एवं भाषा आदि लोक गीतों के माध्यम से पता चलता है। वे अपने जीवन की आशा-निराशा, हर्ष-उल्लास, सुख-दुःख गीतों के जरिए ही व्यक्त करते हैं। उनके लोक गीतों में सामूहिकता, सामाजिकता, समानता एवं एकता का भाव सहजता से अभिव्यक्त होता है। उनमें माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी के प्रति स्नेह ममता का भाव प्रकट होता है। समय परिवर्तन के साथ-साथ उनके लोक गोतों में भी परिवर्तन होना लाज़िमी है। इसलिए आज कोंध आदिवासियों के लोक गीतों में परिवर्तन का स्वरूप दिखाई पड़ता है।

आदिवासी समाज की नारी अपनी सामाजिक मान्यता एवं सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने में अहम भूमिका निभाती है। वह अपनी विडंबनाओं

को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं कर पाती है। इसलिए अपनी संवेदनाओं को गीतों के ज़रिए व्यक्त करने का प्रयास करती है, जिस प्रकार जंगल के पशु-पक्षी तमाम कष्टों के बावजूद हर्ष-उल्लास से गीत गाते रहते हैं, उसी प्रकार आदिवासी नारी भी अपना दुःख-कष्ट सहन करके मौज़-मस्ती से रहती है। आदिवासी नारी की यही मूल प्रवृत्ति रही है। इसलिए वह अपने को पक्षियों के साथ तुलना करती है। भूमंडलीकरण के प्रभाव के कारण उनके लोक गीतों में तलाक व्यवस्था, दहेज प्रथा, पति-पत्नी के बीच तनाव एवं आर्थिक समस्याओं आदि की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। आदिवासी नारी इन सारी समस्याओं से जूझ रही है। उनके गीतों में नारी की संवेदनाएँ स्पष्ट रूप प्रतिफलित होती है।

आदिवासी प्रकृति के सानिध्य में रहता है, और वह प्रकृति के साथ घनिष्ट संबंध स्थापित करता है। वह अपने आपको प्रकृति का हिस्सा मानता है। तथा प्रकृति को ही भगवान के रूप में विश्वास करता है और उसकी पूजा-पाठ करके उपासना करता है। लिहाजा उनके लोक गीतों में नदी, झरना, पेड़-पौधें, फल-फूल, पशु-पक्षि एवं चाँद-तारों का वर्णन देखने को मिलता है। सामान्यतः उनके लोक गीतों के वर्ण्य विषय प्रतीकात्मक एवं तुलनात्मक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। कोंध आदिवासियों के लोक गीतों में मानवता का कटु यथार्थ तथा मार्मिक संवेदनाएँ चित्रित होती हैं। इसलिए उनके लोक गीतों में दीन-हीन, दरिद्रता, निर्धनता, नंगे-भूखे, बेरोजगार एवं विस्थापन आदि सारी समस्याएँ को देखा जा सकता है। केवल यही नहीं उन गीतों में शोषण, दमन एवं ऋण की असहनीय व्यथा का भी उल्लेख मिलता है।

मानव समाज से धर्म का एक अटूट संबंध रहा है। परंतु कोंध समाज में न कोई धार्मिक ग्रंथ है, न ही वे किसी धार्मिक नीति-नियमों का पालन करते हैं। सदियों से जो परंपराएँ, रीति-रिवाज एवं पूजा पद्धत्तियाँ चली आ रही हैं, उन्हीं परंपराओं का अवलोकन करते हैं। इसलिए उनके लोक गीतों में ऐसी धार्मिक मान्यताएँ कम देखने को मिलती हैं। लेकिन उनकी पारंपरिक रीति-रिवाज एवं

पूजा-पद्धति को सामान्यतः उनके गीतों में देखा जा सकता है। कोंध समुदाय के लोक गीत में धर्ती पेन्नु, गोंगी पेन्नु, ग्राकी पेन्नु, जाकेरी पेन्नु, नेला पेन्नु, कोड्ड पेन्नु एवं सती पेन्नु आदि देवी-देवताओं के नामों का उल्लेख मिलता है । यदि आदिवासी समुदाय के धार्मिक भावनाओं को समझना में उनका लोक साहित्य, लोक गीत एवं लोक-कथाएँ आदि कुछ हद तक सहायक हो सकते हैं। किंतु आज उनके समाज में हिंदूकरण एवं मिशनारियों के कुप्रभाव से कई आदिवासी समुदाय के लोग हिंदू एवं मिशनारी धर्म की ओर उन्मुख हो रहे हैं, जिसकी वजह से उनकी पारंपरिक धार्मिक मान्यताएँ धीरे-धीरे समाप्त होने के कगार पर हैं । इसका सीधा प्रभाव उनके लोक गीतों में दिखाई पड़ता है।

कोंध समुदाय में पुरखा लोक-कथाएँ कूट-कूट के भरी हुई हैं । लोक-कथाओं में उनके जीवन-मूल्य एवं संस्कृति प्रमुखता से उद्धरित होती है । इन लोक-कथाओं में ज्ञान-विज्ञान, संघर्ष, एकता, संहिता एवं सामुदायिकता का चित्रण मिलता है, इन लोक-कथाओं के अंतर्गत प्रेम कथा, मनोरंजन एवं पौराणिक आदि दंत कथाओं का उल्लेख भी मिलता है। शोध प्रबंध के अंतर्गत वेरियर एलविन द्वारा संकलित कहानियों में से छः लोक लोक-कथाओं को लिया गया है, और कार्यक्षेत्र के दौरान संग्रहीत पाँच लोक-कथाओं को ही जगह दी गई है। इन कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि उनमें सामान्य विशेषताएँ हैं । लेकिन समय परिवर्तन एवं भौगोलिक भिन्नता होने के कारण उन कथाओं की अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। सामान्यतः वेरियर एलविन द्वारा संकलित कहानियों में लोक कथाओं के माध्यम से संसार को समझने प्रयास किया गया। किंतु कार्य क्षेत्र के दौरान संग्रहीत कुटिया कोंध की लोक कथाओं में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, जीविकोपार्जन की व्यवस्था, रीति-रिवाज एवं रहन-सहन आदि का जिक्र उभर कर सामने आता है।

प्रस्तुत लोक-कथाओं के माध्यम से मानव की सामान्य विशेषताएँ एवं उनकी आंतरिक प्रतिक्रियों को भी समझने का प्रयास किया गया है । इन

कहानियों में कोंध आदिवासियों की दैनंदिन जीवन शैली, उनकी सामाजिक संरचनाएँ, उनकी अर्थ व्यवस्था, उनके रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास आदि का वर्णन है । इनकी अधिकतर लोक-कथाएँ भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि अमानवीय तत्वों पर आधारित होती हैं । इस प्रकार के अदृश्य शक्तियों पर विश्वास कोंध समाज में प्रचलित है ।

आज के भूमंडलीकरण के दौर में कोंध आदिवासी समाज में कई समस्याएँ फन उठके खड़ी हैं । यथा- विस्थापन की समस्याएँ, रोजगार की समस्याएँ, धर्मांतरण समस्याएँ आदि । इन कारणों से कोंध समुदाय के लोक साहित्य एवं लोक जीवन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ रहा है । लिहाजा उनकी जीवन-शैली, लोक संस्कृति, प्राचीन परंपरा, लोक गीत, लोक-कथा एवं सांस्कृतिक विरासत आदि संकट की स्थिति में है । आज कोंध आदिवासी सभ्य समाज से संपर्क में आने पर उनमें अपनी संस्कृति एवं भाषा के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो रहा है । इसलिए उनकी सामाजिक संरचनाओं एवं जीवन शैली में भिन्नता दिखाई पड़ती है । इन्हीं कारणों से कोंध आदिवासी समुदाय का लोक साहित्य समाप्त होने के कगार पर है । इसलिए हमारी संस्कृति प्रति हम सबको जागरूक होना पड़ेगा । इस अध्ययन में कोंध आदिवासी समाज में आज प्रचलित समस्याओं का उल्लेख व विश्लेषण भी करने का प्रयास किया गया है ।

इस विषय क्षेत्र में भविष्य में अनुसंधान की कई संभावनाएँ हैं । यह शोध कार्य मुख्यतः रायगड़ा जिले के कोंध आदिवासी समुदाय और उनके लोक साहित्य पर केंद्रित है । शोध कार्य की समय-सीमा के भीतर जितने लोक गीतों का संग्रह संभव हो पाया है, इस शोध ग्रंथ में प्रस्तुत हैं । इनके अलावा कई और गीत इस इलाके में प्रचलन होने की संभावना है, उन पर कार्य किया जा सकता है । इसी प्रकार अन्य प्रांतों यथा-कोंधमाल, कालाहांडी, मलकानगिरि, कोरापुट, नंबरंगपुर, गंजाम, गजपति तथा आंध्रप्रदेश के विजयनगरम एवं विशाखापट्नम आदि जिलों के कोंध आदिवासी समुदाय में

प्रचलित लोक साहित्य का संग्रह, विश्लेषण किया जा सकता है, रायगड़ा सहित इन प्रांतों में प्रचलित कुई भाषा संबंधी पुस्तकों और कोशों के निर्माण के लिए भी प्रयास किया जा सकता है।

*****

संदर्भ ग्रंथ की सूची

हिंदी संदर्भ ग्रंथ

1. उदय सिंह राजपूत, (2010) *आदिवासी विकास एवं गैर सरकारी संगठन*, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

2. एस.एन चौधरी, मनीष मिश्र, (2012) *आदिवासी विकास उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ,* भाग-1, Concept Publishing Company (P) LTD

3. एमेकर पवन नागनाथ डॉ., (2016) *लोक साहित्य: वैश्विक परिदृश्य,* Volume :1 Yeshwant Mahavidyalaya, Maharashtra

4. केदार प्रसाद मीणा, (2014) आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, अनुज्ञा बुक्स दिल्ली - 110032

5. कृष्णदेव उपाध्याय डॉ. ,(1657*) लोक साहित्य की भूमिका,* साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

6. दुर्गाराव बाणावतु भीम सिंह सं., (2015) साक्षात्कारों में आदिवासी, अलख प्रकाशन, जयपुर - 302019

7. निर्मल कुमार बोस, (1976) अ- श्याम परमार, *भारतीय आदिवासी जीवन*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

8. पप्पू राम माणा डॉ., (2017) लोक-संस्कृति की अवधारणा और राजस्थान का लोक-जीवन, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद - 201012

9. प्रकाश चंद्र मेहता, (2006) *आदिवासी पविकास एवं प्रथाएँ, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली - 110002*

10. बन्ना राम मीणा डॉ. (2018) *आदिवासीनामा, आदिवासी साहित्य और परंपरा की खोज,* साहित्य संचय, दिल्ली-110090

11. महादेव टोप्पो, (2018) *सभ्यों के बीच आदिवासी*, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली-110032

12. रमणिका गुप्ता सं. (2008) *आदिवासी कौन*, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिचेड, नई दिल्ली – 110002

13. रमेश चंद मीणा डॉ., (2013) *आदिवासी विमर्श,* राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी

14. राजेश श्रीवास्तव 'शंबर' डॉ, (2010) *लोक साहित्य*, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल - 462001

15. रामनाथ शर्मा, राजेंद्र शर्मा, *मानवशास्त्र,* (2004) एटलांटिक पब्लिशर्स, एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली- 110027

16. रामनाथ शर्मा,राजेंद्र कुमार शर्मा, (1996) *शैक्षिक सामजशास्त्र*, एटलांटिक पब्लशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली – 110027

17. राम रतन प्रसाद डॉ., (2014) *आदिवासी लोकगीतों की संस्कृति*, अनंग प्रकाशन, दिल्ली

18. वेरियरएलविन, (2008) *जनजातीय मिथक (उडिया आदिवासियों की कहानियाँ)* अनुवाद- निरंजनमहावर, वन्य प्रकाशन, आदिमजाति कल्याण विभाग राजीव गांधी भवन, 35 श्यामला हिल्स, भोपाल – 462002

19. शेख़ अब्दुल ग़नी डॉ., सं. (2015) जनजातीय भाषा और साहित्य चिंतन, देव प्रकाशन दिल्ली - 11003

20. हरिनारायण दत्त, श्रीमती जसप्रीत बाजवा, *आदिवासी स्वर-3, संस्कार और प्रथाएँ,* आकृति प्रकाशन, दिल्ली- 110093

21. हरिश्चंद्र उप्रेती डॉ., (2000) *भारतीय जन जातियाँ संरचना एवं विकास*, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकदमी, जयपुर

22. हरिराम मीणा, (2012) आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ओडिया संदर्भ ग्रंथ

1. *କୁଟିଆ କନ୍ଧ ଆଦିବାସୀ* ଅନୁସୂଚିତ ଜନଜାତି ଓ ଅନୁସୂଚିତ ଜାତି ଉନ୍ନୟନ ବିଭାଗ , ସଂସ୍କୃତି କାଡମୀ, ଭୁବନଶ୍ୱର750109- (कुटिया कंध, आदिवासी भाषा एवं संस्कृति अकादेमी अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग, भुवनेश्वर, 750109)
2. ଡଂଗରିଆ କନ୍ଧ ଆଦିବାସୀ, ଅନୁସୂଚିତ ଜାତି ଉନ୍ନୟନ ବିଭାଗ, ସଂସ୍କୃତି ଏକାଡେମୀ, ଭୁବନଶ୍ୱର- 750109 (डंगरिआ कोंध, आदिवासी भाषा एवं संस्कृति अकादेमी अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग, भुवनेश्वर, 750109)
3. ହାଡି ବନ୍ଧୁ ମିର୍ଦ୍ଧା, ଆଦିବାସୀ ଜୀବନ ଚର୍ଯ୍ୟା, ଆଦିବାସୀଭାଷା ଓ ସଂସ୍କୃତି ଏକାଡେମୀ ଆଦିବାସୀ ପଡ଼ିଆ ,ୟୁନିଟ୍1 –ଭୁବନଶ୍ୱର- (डां. हाडिबंधु मिर्धा, आदिवासी जीवन चर्या, आदिवासी भाषा और संस्कृति अकादमी, आदिवासी मौदान युनिट -1 भुवनेश्वर, 751009)
4. डॉ. परमानंद पटेल, ओडिया-कुवी शब्द कोश, आदिवासी भाषा एवं संस्कृति अकादेमी अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग, भुवनेश्वर, 750109

अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ

1. *Demographic Profile of Scheduled Tribes in Odisha.*

2. G.N.Shinde Dr., Sandip Dr., Paikro Dr., K.B.Gitte Dr., (Eds) (2016) *Folk Literature: Global Perspective, Hindi : Volume : 1,* Yeshwant Mahavidyalaya, Maharashtra.
3. Gopabandhu Das Dr., *Kui, Academy of Tribal Dialect and Culture.* Harijan and Tribal Welfare Department Government of Orissa, Adivasi ground, Bhubaneswar-751009
4. J.E. Friend Pereira, (1909) *A Grammar of the Kui Language,* B.A of the Provincial Civil Service, Bengal, 1st Edition, Calcutta Bengal Secretariat Book Depot.
5. Niahar Ranjan Patnaik, (1992) *History and Culture of Khand Tribes,* Commonwealth Publisher's, New Delhi.
6. *Oxford Student's English-Hindi Dictionary*, (2005) Oxford University Press.
7. William Little, H.W.F Fowler and Jessie Solson, *The Shorter Oxford English Dictionary on Historical Principles ,* Prepared Clarendon Press oxford United States by Oxford University Press. New York.

पत्र-पत्रिकाएँ

1. मूक आवाज़, संपादक- डॉ. प्रमोद मीणा
2. आदिवासी साहित्य, संपादक- गंगा सहाय मीणा

3. जनकसिंह मीणा, स्व.बी.पी वर्मा, अरावली उद्घोष (सामाजिक साहित्यिक जनचेतना की सामयिक पत्रिका)
4. ककसाड़, संपादक- कुसुमलता सिंह, डॉ. राजाराम त्रिपाठी
5. हाशिये की आवाज़, संपादक – रंजित तिगा

वेब साइटः-

1. www.debateonline.in,
2. www.thefreedictinary.com,
3. www.dict.hikoj.com,
4. www.shabdkhosh.com
5. www.censusindia.gov.in
6. http://srijansamarth.blospot.in/2013/06/blog-post.html
7. http://www.apnimaati.com
8. https://en.wikipedia.org/wiki/Kui_language_(India)
9. https://www.britannica.com/topic/Kui-language
10. https://archive.org/details/grammarofkuilang00frierich
11. http://www.allresearchjournal.com/archives/2016/vol2issue10/PartF/2-10-27-592.pdf

परिशिष्ट -1

1. लोक-कथा - सृष्टि का निर्माण

2. लोक-कथा - सृष्टि का निर्माण

3. लोक-कथा - मनुष्य की उत्पत्ति

4. लोक-कथा - मनुष्य की उत्पत्ति

5. लोक-कथा - सूर्य और चंद्रमा की उत्पत्ति

6. लोक-कथा - कीड़ों, मक्खी, मच्छरों की उत्पत्ति

7. लोक-कथा - मच्छर की कहानी

8. लोक-कथा - बुजुर्ग व्यक्ति एवं लोमड़ी की कहानी

9. लोक-कथ - बंदर एवं बुजुर्ग दंपत्ति की कहानी

10. लोक-कथा - बारह भाई एवं चूहे की कहानी

11. लोक-कथा - बुजुर्ग व्यक्ति एवं घोंघा की कहानी

लोक - कथा -1

सृष्टि का निर्माण

सृष्टि का निर्माण के संबंध में वेरियर एलविन की पुस्तक 'जनजातीय मिथक' (Tribal Myths of Orissa) में उल्लेख मिलता है –

"एक दिन सभी देवता भगवान के दरबार में एकत्रित हुए और उन्होंने वहाँ विश्व की उत्पत्ति के विषय में चर्चा की कि किस प्रकार विश्व की उत्पत्ति की जाए। भगवान ने सभी देवताओं से कहा कि, "सब लोग अपने-अपने शरीर से थोड़ा-थोड़ा रक्त निकालें," और उन लोगों ने वैसा ही किया। तब उन्होंने कह, "सब लोग अपने-अपने शरीर से थोड़ा-थोड़ा मैल निकालें," उन्होंने भगवान की आज्ञा का पालन किया। उस संपूर्ण रक्त और मैल से एक विशाल चपाती बनाई गई। उस चपाती को उन्होंने जल पर फेंक दिया और इस तरह विश्व (पृथ्वी) का निर्माण हुआ।"[37]

लोक - कथा -2

" प्राचीनकाल में जब भूमि जल में डूबी हुई थी, तब रूमरोक ने आकाश पर फैले हुए मकड़े के विशाल जाले में एक बहुत बड़ा सूअर लटका दिया था। जब रूमरोक ने नई सृष्टि की रचना करने का निश्चय किया, तब उन्हें कहीं से भी मिट्टी नहीं मिल पा रही थी। उन्होंने अनेक स्थानों को खुरचकर देखा पर कहीं भी सफल नहीं मिली, परंतु जब वे मिट्टी को खोज में उस सूअर के पास गए तब उन्हें उसकी पूँछ पर लगी हुई कुछ मिट्टी मिली। उन्होंने वह लेक र पानी पर छिड़क दी। वह मिट्टी उगकर बढ़ने लगी और बढ़ते-बढ़ते वह इतनी अधिक फैल गई कि जब सूखने लगी तो संपूर्ण जल ढ़क गया परंतु वहाँ कीचड़ के कारण नमी और गंदगी बनी हुई थी, तब रूमरोक ने सुअर को

[37] वेरियर एलविन, जनजातीय मिथक, पृ.सं- 41

मारकर उसकी हड्डियों को पीसकर सर्वत्र फैल दिया । जब कीचड़ सूख गई तब पृथ्वी की सतह सख्य और मजबूत बन गई ।"[38]

आदिवासी समाज के लोक कथाएँ परंपरागत रूप से सुरक्षित रहा है । वे अपनी लोक कथाओं के माध्यम से संसार या पृथ्वी को समझने प्रयास करते हैं, और अलौकिक शक्ति पर विश्वास रखते हैं । लिहाजा उनके लोक कथाओं में पृथ्वी का निर्माण तथाकथित देवता को मानते हैं ।

लोक - कथा - 3

मनुष्य की उत्पत्ति – (कोंड, गुमका, कोरापुट जिला)

"जाओराताली आकाश (देवलोक) में रहते हैं । उन्होंने अंडे के सदृश्य एक आकृति बनाई । जो भी कोई पितर (पूर्वज) पुनर्जन्म लेना चाहता था वह उस अंडे में प्रविष्ट हो जाता था । तब जाओराताली उससे पूछते, "तुम सुंदर बनोगे या कुरूप,?" अंडा कहता, "सुंदर ।" "तब मुझे क्या दोगे, ?" जाओराताली ने पूछा । यदि वह अंडा सचमुच में सुंदर बनना चाहता तो कहता, "बकरे, सूअर और मुर्गे ।" यदि उसे इस बात की कोई चिंता नहीं होती तो वे कहते, "भला हम आपको क्या दे सकते हैं ?" जाओराताली के पास दो किस्म की मिट्टि थी- सुंदर और कुरूप । यदि कोई सुंदर बनना चाहता और सुंदर बालक के रूप में उस बालक का पुनर्जन्म होता ।"[39]

लोक - कथा – 4

[38] वेरियर एलविन, जनजातीय मिथक, पृ.सं. 42

[39]वेरियर एलविन, (2008) जनजातीय मिथक, पृ.सं- 357

कोंड, चेनगुडा, जिला गंजाम

"सृष्टि के आरंभ में जल सर्वत्र जल ही जल था । तब पिन्नू और पुसुरोली सफलगन्ना में उत्पन्न हुए । उनके रहने के लिए कोई भी स्थान नहीं था, अतः वे जल की सतह पर तैरते रहे । उन्हें विश्राम करने हेतु ऐसा कोई स्थान नहीं मिला, जहाँ वे अपने पेर दिका सकते । अंत में उन्हें एक मृत बिच्छू दिखाई पड़ा जिसका सिर किसी पर्वत के आकार जितना विशाल था । बूढा पिन्नू तथा पुसुरोली दोनों उस पर चढ़ गए औऱ तैरने लगे । वे दोनों इस बीच यही सोचते रहे कि पृथ्वी का निर्माण कैसे किया जाए । उन्होंने उस बिच्छू की खाल को अपने नाखूननों से उतारा और उसे जल की सतह पर बिछा दिया । इस काम में उन्हें सात दिन लगा गए । बिच्छु की हड्डियों से उन्होंने खूंटे बनाकर पृथ्वी के चारों कोने में गाड़ दिए ताकि पृथ्वी स्थिर रहे । उस बिच्छू के माँस के टुकडे-टुकडे करके उसे जल की सतह पर बिछा दिया । बिच्छू की पीट चट्टानों में बदल गई । इस प्रकार पृथ्वी बन कर तैयार हो गई । तत्पश्चात् बूढा पिन्नु ने प्राणियों, पशुओं तथा मनुष्यों को उत्पन्न करने पर विचार किया । उन्होंने उस बिच्छू का एक टुकड़े को जीवित बिच्छू पुत्र उत्पन्न करने के लिए पानी में फेंक दिया । उससे तुरंत ही समस्त प्राणी उत्पन्न हो गए ।"[40]

वेरियर एलविन संग्रहीत लोक कथाओं के माध्यम से उनकी विश्वदृष्टि को समझने प्रयास किया है । भौगोलिक भिन्नता हेतु उनके लोक कथाओं में शैलीगत भिन्नता एवं लोक कथाओं का विशेषताएँ परिवर्तन होते हैं । इन कथाओं से यह प्रतीत होता है कि एक ही समुदाय के लोक कथाओं में भिन्नता दिखाई पड़ती है । तथा बहुत से कथाओं के बीच समानता भी पाई जाती है। वेरियर एलविन ने अपनी पुस्तक में विशेष कर कोंध या कोंड एवं सांवरा के ज्यादातर लोक कथाओं का जिक्र किया है।

[40] वेरियर एलविन, (2008) जनजातीय मिथक, पृ.सं- 358

उनकी लोक कहानियों में मानव की व्यत्पति किसी कीड़े- मक्खीड़े एवं पशु-पंछी से माने जाते हैं।

लोक - कथा – 5

सूर्य और चंद्रमा की उत्पत्ति

"बारतगढ़ में कुट्टी माँझी नामक भतरा रहता था। उस समय वहाँ की जनसंख्या बहुत थोड़ी था, लोगों को सामान्यतः अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता था और वे थड़े से बीज खेतों में बो देते थे और उतने ही से उनके काम चल जाता था। कुट्टी माँझी ने जंगल काटकर एक बगीचा बनाया और उसमें मक्का बो दी। जी फसल पककर तैयार हो गई तब उसने अपने बेटे-बहू को रात में रखावाली के लिए भेजा। परंतु चंद्रमा ने आकर बगीचे से मक्का चुरा ली।

सबुह होने पर कुट्टी माँझी को रात में हुई चोरी का पता चल गया और उसने अपने बेटे को डाँट-फटाकर लगाई। दूसरी रात वह स्वयं बगीचे की चौकसी करने के लिए गया और उसने मचना के नीचे आग जला छोड़ दी। जब वह सो गया तब चंद्रमा आधी रात के समय आया और उसने मक्का चुरा ली।

कुट्टी माँझी की नींद टूट गई और वह जाग उठा। उसने मचान से उतरकर एक जलती हुई लकड़ी उठाई और उससे चंद्रमा को पीटने लगा और तब तक पीटता रहा जब तक कि उसका संपूर्ण शरीर आग से झुलसने के कारण पड़े धब्बे आज भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं।"[41]

[41] वेरियर एलविन, जनजातीय मिथक, पृ.सं - 55

लोक -कथा - 6

कीड़ों, मक्खी, मच्छरों की उत्पत्ति (कुटिया कोंड, डुप्पी, गंजाम)

"एक दंपति अपने बेवर (खेती हेतु साफ किया हुआ जंगल) में गए। उन्होंने दामक की एक बांबी देखी। वे उसके समीप ही पहाड़ पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि वहाँ कोई छिपा हुआ है। वह व्यक्ति देखने गया कि वह है क्या जब उसने देखा कि वह केवल दीमक की एक बांबी है। तब उसने उसे एक लात जमाई और वह बिखर गई। इसके बाद उसने उस स्थान पर एक बांस का एक पौधा लगा दिया। वापस जाकर उसने अपनी पत्नी को सारा किस्सा सुनाया। दो दिन बाद जब उसने वहाँ जाकर देखा तो पाया कि चींटियां ने बांस की डंडी को खा लिया है। उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि वे चींटियां कितनी शक्तिशाली हैं।

अब हमें मालूम है कि चींटिया अपनी बंबी से निकाकर पत्ते , लकड़ी, बांस आदि खाकर उनको खाद में परिवर्तित कर देती हैं और इस कारण से हमें अच्छी फसल प्राप्त होती है। अब जिस स्थान पर बसते हैं तो उस स्थान पर चींटियां भरी होती हैं और उन्हों शुभ मानते हैं। हम चींटियों को कभी नहीं मारते।"[42]

[42] वेरियर एलविन, जनजातीय मिथक, पृ.सं - 198

शोधार्थी द्वारा संग्रहीत कुटिया कोंध समुदाय की लोक - कथाएँ

लोक-कथा - 7

मच्छर की कहानी

एक मच्छर युवती का रूप लेकरशादी करने के लिए युवकों को ढूंढने जा रही थी।

रास्ते में एक हिरन के साथ भेंट हुई । हिरन मच्छर (युवती) से पूछती है –

“आशा आशा बृशा बृशा, आवाड़ी बांडीता निडिकीतु नावु ”

कहाँ जा रही हो इतना सुंदर बन कर ? मच्छर कहती है - माँची मुगुडु की आईते नाडिकी नानु (मैं अच्छे पति को ढूंढने जा रही हूँ) ।

हिरनी – नाकु ओस्तावा (क्या मुझसे शादी करोगे ?)

मच्छर – कंडावालु निकु आवालु ओस्तारू (पहाड़ में रहने वालों से कौन शादी करेगी)

मच्छर वहाँ से चली जाती है । जाते जाते रास्ते में मुर्गा के साथ मुलाकात होता है। मुर्गा मच्छर से पूछता है - “आशा आशा बृशा बृशा, आवाड़ी बांडीता निडिकीतु नावु ” (तुम किसको ढूंढने जा रही हो मुझे शादी कर लो)

मच्छर बोली- निकु आवालु ओस्तारू, निवु कोकेट आनी ऊंटावु (तुझसे कौन शादी करेगी, रोज कोकेट की आवाज़ करते रहोगे)

मच्छर वहाँ से चली गई। रास्ते में एक जंगली सूअर के साथ मुलाकात होती है। सूअर सिर पर पगड़ी एवं कमर में एक फेंट पहन कर खड़ा था। सूअर मच्छर से बोली –

"आशा आशा बृशा बृशा, आवाड़ी बांडीता निडिकीतु नावु " (तुम किसको ढूंढ़ने जा रहे हो मुझसे शादी कर लो)

मच्छर – हां निकु आईते ओस्तानु हां (मैं तुझे ही शादी करूँगी)। सूअर मच्छर से गाले मिलाया और दोनों एक साथ रहने लगे। तत्पश्चात् हर्ष-उल्लास से गीत गाने लगे। गीत इस प्रकार है।

मेका पिला माकु रामा नाना।
आल्ला पाईनु पुडुतु पुडुतु ।।
कोडी पिला माकु रामा नाना।
आल्ला पाईनु पुडुतु पुडुतु ।।

सूअर नाचते नाचते मच्छर से गले मिला रहा था। लेकिन युवती से मच्छर बन कर वहाँ से चाली गई। सूअर मच्छर को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते रह गया। कहानी यहाँ पर समाप्त हो जाती है।

इस कहानी के माध्यम से कुई एवं तेलुगु भाषा के अंतर्संबंध को समझ सकते हैं, कोंध आदिवासी समाज में कई प्रकार की तेलुगु की लोक कथाएँ प्रचलित हैं। कहानी से एक भाव प्रकट होता है कि मानव समाज में सुंदर एवं असुंर की परिभाषा है। पुरुष स्त्री के सौंदर्य की ओर आकर्षित हुए बिना रह नहीं सकता है, और सुंदर स्त्री से ही विवाह करना चाहता है। जिस प्रकार फूल क्षण के लिए सौंदर्य का आभास देता है। ठीक उसी प्रकार सुंदरता भी क्षण के लिए होती है। इस कहानी में सूअर मच्छर की सौंदर्य को देख कर उससे शादी कर लेता है। लेकिन बाद में मच्छर बन कर उड़ जाती है। कहने का तात्पर्य यह है

कि सुंदर एवं असुंदर की परिभाषा से दूर हट कर समाज में एक समानता एवं मानवीय जीना अपरिहार्य है।

लोक - कथा - 8

बुजुर्ग व्यक्ति एवं लोमड़ी की कहानी

एक गाँव में सात लोमडी रहती थी। उनमें से एक लोमडी दृष्टि हीन थी। उस जंगल में एक बुजुर्ग व्यक्ति भी रहते थे। उस बुजुर्ग के खेत के मक्का को लोमडियाँ रोज खा रही थी। बुजुर्ग ने सोचा की उन लोमडियों को कैसे मार पाऊंगा। वह बूढ़ा मक्का बन कर उस मक्के के खेत में खड़ा हो गया। एक लोमडी बहुत बड़ा मक्का देख कर तोड़ने जाती तो बूढ़ा लोमडी का हाथ काट लेता है। लेकिन दृष्टिहीन लोमडी ने उस बुजुर्ग को देख कर कहा - 'बुचाला ताता कुचउनाडु' (बुजुर्ग दादा उस मक्का के अंदर है)। लोमडियाँ मक्का छोड़कर खीरा खाने गयी। उस खीरे में भी बूढ़ा खीरा बन कर रह गया था। एक लोमडि खीरा तोड़ने गयी और बुढ़ा ने लोमड़ी का दूसरा भी हाथ काट लिया। दृष्टिहीन लोमडी उस बुजुर्ज को देख कर कहा - 'बुचाला ताता कुचउनाडु' (बुजुर्ग दादा उस मक्का के अंदर है)। लोमडियाँ सोच में पड़ गई। कहीं भी खाने जाते हैं तो वहाँ पर बूढ़ा पहुँच जाता है। लोमडियाँ ने झरने में केंकडें पकड़ने गई। बूढ़ा झरना में जाकरकेंकडा बन कर एक पत्थर के नीचे रह गया। लोमडी केंकडा समझ कर पकड़ रही थी, बूढ़े ने दूसरा लोमड़ी का हाथ काट लिया। तत्पश्चात् लोमडियाँ वापस अपने गाँव चली गाई।

बूढ़ा एक वाद्ययंत्र तैयार करके लोमडियों के गाँव में भीख माँगने गया, और गीतों के माध्यम से कहानी सुना कर भीख माँगने शुरू किया। गीत इस प्रकार है।

जनालु डोडिकाडा निने काना तिनेक तिनेकी।

शामालु डोडिकाडा निने काना तिनेक तिनेकी।।

ऐंड्रा काडा बोका काडा निने काना तिनेकी तिनेकी।

शामालु डोडिकाडा निने काना तिनेक तिनेकी।।

बुजुर्ग की कहानी सुनने के पश्चात खुश हो कर लोमडियाँ ने उसको सारा अनाज दे दिया । सारा अनाज दे देने के बाद लोमडियां भूख से सारी लोमडियों की मृत्यु हो गयी।

कहानी के माध्यम से यह प्राप्त होता है कि समाज में कई प्रकार के लोग होते हैं। दूसरे के धन दौलत देख कर जलन-ईर्ष्या करते हैं, और उसे छीनने की कोशिश करते हैं। वही जलन एवं ईर्ष्या भाव ही उसे मार डालता है।

लोक-कथा - 9

बंदर एवं बुजुर्ग दंपत्ति की कहानी

जंगल में दो बुजुर्ग दंपत्ति रहते थे। वे जंगल को साफ करके वहाँ पर झूम की खेती करके जीवन-यापन करते थे। उस झूम के खेत में दोनों बीज रोप रहे थे। बंदर ने पेड़ के ऊपर बैठ कर देख रहे थे। बंदरों ने दंपत्ति से पूछा-ऐना किईजेरी ताता ? (दादा जी क्या कर रहे हैं ?)

बूढ़े ने कहा – कांगा उही नेमी कोंजाहा (बीज बो रहे हैं बंदर)

बंदर – तामु ताता माँबुवा ऊहाली आंडी तानेमी (दादा जी हम भी आपके साथ काम करेंगे)

बूढ़ा – पुणादेरी कोंजावा (बंदर आप लोग ये काम नहीं कर सकते हैं)।

बूढ़ा ने बंदरों को काम करने के लिए मना कर देता है। लेकिन बूढ़ी ने बुढ़ा की बात नहीं मानी और बंदरों को काम करने के लिए बुला लिया। बंदर एवं दंपत्ति ने मिल कर बीज बोये। बीज बोने के पश्चात बारिश हुई। जिस क्षेत्र में बंदरों बीज बोये थे। उस क्षेत्र में बीज अंकुरित नहीं हुआ। क्योंकि बंदरों ने बीज को खा लिया था। इसलिए बीज बोए ही नहीं अंकुरि कैसे होंगे। दोनों सोच में पड़ गये है कि बंदरों को कैसे मारा जाए। बूढ़े ने एक उपाय सोचा और वह घर में जाकरसो गया। बंदरों ने बुढ़िया के पास जाकरपूछा – आतु ताता निजुं वया हिलेसी की (दादी माँ आज दादा जी नहीं आए क्या ?)

बुढ़िया – हिले कोंजाहा निंजुकोह नोंबेरी आहा तुहाने (हां बंदर नहीं आए आज उनकी तबीयत ठीक नहीं है)। इसलिए नहीं आ पा रहे हैं।

बंदर – आपे आती आतु तताआ हेंगा हानेमी, (ठीक है दादी माँ हम दादा जी को देख कर आएंगे)।

बुढ़िया – हाजुशामा कोंजाहा नंबेरी आहा तुहाने कता आयाली मुतेसी (जाओ बंदर, लेकिन बात नहीं कर पाएंगे)

बंदर बूढ़े को देखने के लिए घर पर पहुँच गये। ठंड का मौसम था। इसलिए बूढ़ा खटिया के नीचे आग रख कर एवं चादर ओढ़ कर सो गया । बंदरों ने बूढ़े को ताता कह कर बार-बार बुलाया, लेकिन बूढ़ा सुनते हुए भी चुप-चाप सो गया। बंदरों ने दरवाजा खोल कर अंदर जाकरबूढ़े की हालत पूछी।

बंदर – क्या दादा जी आपका तबीयत ठीक नहीं है ?

दादा – हां कंजाहा रि दिना आते नोंबेरी आहा तुहा जाने। (हां कंजाहा दो दिन से हुआ मेरी तबीयत ठीक नहीं है)। बंदरन बूढ़े के खटिया के चारों ओर बैठ कर रोने लगे।

बूढ़े ने धीरे-धीरे लकड़ी उठायी और बंदरों को मार भगाया। उसके घर के बगल वाली बुढ़िया बोली - नहीं बंदर जिस दिन उनका तबीयत ठीक नहीं रहता है तो उस दिन लोगों को मारता रहता है। बंदर जंगल की ओर चले गये, और जंगल में जाकरबुढ़िया से कहा – आतु ताता माँगे इराहा तुस्ता तेस्ती। दादी माँ दादा जी ने हमें लकड़ी से मार भगा दिया।

दूसरे दिन भी बुढ़िया अकेली जंगल पर गई हुई थी। बंदरों ने पूछा क्या दादी माँ दादा जी आज भी काम पर नहीं आये।

बुढ़िया–हिले कोंजाहा आज भी नहीं आये। उनको आज ज्यादा बुखार हो गया इसलिए नहीं आये हैं। बंदर बूढ़े को देखने के लिए घर गये, और दरवाजा खोल कर घर के अंदर प्रवेश किया बुढ़िया उस दौरान जंगल से आ रही थी। बंदरों को देख कर अंदर दरवाजा बंद कर दिया। कई बंदर को दरवाजा बंद करके मार दिया और बाकी छत से छेद कर निकल गये। दंपत्ति ने बंदरों को पका कर खा लिये।

इस कहानी के माध्यम से कोंध आदिवासियों की तत्कालीन सामाजिक जीवन पद्धति एवं उनकी संस्कृति अवगत होती है। उनकी लोक कथाओं में पहाड़ों, जंगलों एवं उनकी जीविकोपार्जन आदि प्रतिबिंबित होती है। कोंध आदिवासी जंगली जानवरों का शिकार करके उसका माँस भक्षण करते हैं। इसलिए उनकी लोक कहानियों में भी इस प्रकार का चित्रण मिलता है।

लोक - कथा -10

बारह भाई एवं चूहे की कहानी

एक घर में बांगेरी नाम की बुजुर्ग बुढ़िया रहती थी । उसके घर में विपुल परिमाण से धन दौलत था । उसी गाँव में बारह भाई रहते थे । वे बहुत आलसी थे । इसलिए चोर डकायत का काम करते थे । उस इलाके में बांगेरी बुढ़िया धन दौलत के लिए प्रसिद्ध थी । एक दिन बुढ़िया काम करने खेत पर गई हुई थी । सभी भाई उस घर की धन दौलत चोरी करने गये उस दौरान उनको चूहा एक कोने में रह कर चुप-चाप देख रहा था । चूहा उनको देख कर गीत गाया ।

चोरों ने चूहे की आवाज़ सुन कर देखने की कोशिश की । लेकिन देख नहीं पाये । उस दिन चुप-चाप वापस चले गये हैं । चोर फिर से एक दिन और चोरी करने गये । उस दिन भी चूहे की आवाज़ सुनाई दी ।

चोरों चूहे को ढूंढ के मार डाला और आग में सेंक कर खा लिये । तत्पश्चात वहाँ की धन दौलत ले गये । जिसने भी चूहे का माँस खाया सब लोग चूहे की तरह आवाज़ करने लगे । रास्ते में वक्त बड़े भाई के पेट से चूहे की आवाज़ आई ।

तिरियो बारा जाणा डोंगाहा

तिरियो कोडा जाणा डोंगाहा

उनके छोटे भाईयों ने चर्चा की कि यदि बड़े भाई जिंदा रहेंगे तो सारे लोगों को धन दौलत के बारे में पता चल जाएगा । इसलिए उसे मार डालना ही बेहतर समझे, और बड़े भाई को मार दिया गया । सारे भाईयों के पेट से चूहे की आवाज़ सुनाई दी । इसलिए धीरे-धीरे एक एक करके मार दिया गया । आखिर में छोटा भाई बचा था । वह सारी धन दौलत घर तक लेकरगया । लेकिन उसके पेट में भी चूहे की आवाज़ सुनाई दी । और छोटे भाई की पत्नी ने उसे भी मार डाला । कहानी यहाँ समाप्त हो जाती है ।

कहानी के माध्यम से एक बिंब प्रतिबिंबित होती है । मानव समाज में जो चोरी-डकैयती करता है । उनका अभिनय ज्यादा दिन तक टिकता नहीं है । और

जिसने भी दूसरे की धन दौलत देख कर जलन या ईष्या का भाव उत्पन्न होता है। उसके मन में पैदा हुई जलन या ईष्या का भाव खूद को ही मार डालता है। इसलिए खूद की मेहनत की कमाई से संतुष्ट हो कर आनंदमय जीवन जीना चाहिए। कहानी यह सीखाती है कि गलत रास्ते को छोड़कर एक सच्चा कर्मठ व्यक्ति बनना चाहिए। यही कहानी का मुख्य उद्देश्य है।

लोक - कथा - 11

बुजुर्ग व्यक्ति एवं घोंघा की कहानी

एक बूढ़ा खेत में कम्हडा लगाया था। उस खेत में घोंघा आहार ढूंढ रहा था। उस दौरान मोर घोंघा के पास गया। मोर बोली घोंघा को चल मामा बूढ़े के खेत में काफी कुम्हडा का फल है, चलो मामा फल खा कर आएंगे। घोंघा बोली – हिले मामा नानु आडि मुआनी मामा मैं चाल नहीं सकता हूँ। मोर – चालिए मामा जी मैं तुझे कंधे पर उठा के लेकरजाऊंगा। मोर एवं घोंघा बूढ़े के खेत पर गये। उस खेत में काफी कुम्हडा पका हुआ था। मोर खेत पर पहुँच कर कुम्हडा को छेद करके घोंघ को अंदर रख दिया। मोर ऊपर से एवं घोंघ अंदर से कुम्हडा खा रहे थे। उस दौरान खेत पर बूढ़ा गया हुआ था। बूढ़े ने मोर की आवाज़ सुन कर मार भगाया। मोर घोंघ को छोड़कर उड़ के चली गई। घोंघा कुम्हडा के अंदर इस प्रकार रो-रो कर रह गया ।

केलुता कियाना मारा कियाना ओएनी ईंजाती

गुणका णिईं टामा णिईं

घोंघा की आवाज़ सुन कर बूढ़ा और बुढिया कुम्हडा के पास पहुंचे । बूढ़ा ने बोला - बुढ़िया हमारे घर में धन दौलत आ गयी, देखो खेत पर घोंघा गीत गा

कर नाच रहा है । तत्पश्चात कुम्हडा को तोड़ कर घर पर ले गये । घोंघा घर में जाने के बाद जोर से रोने लगा।

ऐ मेलु काणा मामा

केलुता कियाना मारा कियाना ओएनी ईंजाती

गुणका णिईं टामा णिईं

घोंघा की रोने की आवाज़ सुन कर बूढ़ा और बुढिया हर्ष-उल्लास से नाचने लगे । पडोसी की एक दृष्टिहीन बुढ़िया उनके पास आग लाने गई थी । वह भी उनके साथ लकड़ी को ऊपर-नीचे करके नृत्य करने लगी । बुढ़िया के नाचते वक्त घोंघा उसके पैर के नीचे आ गई थी । इसलिए घोंघा की मृत्यु हो जाती है

बूढ़ा बोला- दृष्टि हीन बुढिया की वजह से हमारे धन संपत्ति नष्ट हो गई ।

इसलिए दोनों ने मिल कर उस दृष्टिहीन बुढ़िया को मार डाला । उसके शव को बूढ़ा नदी पर फेंकने गया । नदी में फेंकते वक्त शव का अंगूठा बूढ़ा के हाथ में लग गया । इसलिए बूढ़ा भी शव के साथ नदी में बह गया ।

*****

झूम खेती

विवाह के दौरान महिलाएँ गीत गाती हुई

महिलाएँ विवाह गीत गाती हुई

विवाह के दौरान बँसी बजाते हुए

देवी-देवता

डंगरिया कोंध महिलाओं के साथ शोधार्थी

त्योहार के दौरान महिलाएँ बेवश हो कर नाचते हुए

नगाड़े बजाते हुए

गृह निर्माण में लगे हुए कुटिया कोंध आदिवासी

परिशिष्ट - 3

ओडिशा के रायगड़ा जिले के लोक-गीतकार

(कार्य क्षेत्र भ्रमण के दौरान सहयोग करने वालों का नाम)

दुर्गापाडु के गाँव महिलाएँ

1. दृनि पुआला
2. पुष्पा पुआला
3. शुशीला पुआला
4. शारशा पुआला
5. ललीता पुआला
6. पुस्ते पुआला
7. पुस्ते कंडगोरी
8. गिंडी पुआला
9. कुंदा पुआला
10. जंती पुआला
11. आमालु पुआला
12. रैना पुआला
13. श्रीमी जिलाकारा
14. शाबी पुआला
15. चंद्र पुआला
16. सूर्य पुआला
17. रूमे पुआला
18. सपा पुआला
19. गांगी पुआला
19. कुंकु जिलाकारा
20. शुकी पुआला
21. प्रियदर्शनी
22. शुंकु पुआला
23. गुटा पुआला
24. माजुरी कंडागोरी
25. ऐलो पुआला

चंपी गाँव के महिलाएँ

1. बासंती पुआला
2. रेबती कलाका
3. सरश्वती तिमाका
4. मिशा पुआला
5. शुनी कलाका
6. सिपु वाड़ाका (कझुरी)
7. कोते वाड़ाका (कझुरी)

पुरुष

1. ब्रज पुआला
2. दासाना पुआला
3. कामाशा पुआला
4. शातमा कंडागोरी
5. जोगु तिमाका
6. टिसु पुआला
7. आडा पुआला
8. ब्रंगाला जिलाकारा
9. ओबी पुआला
10. सदा माँडांगी
11. गुटा तांडिंगी
12. तुमानाथ
13. कंबु पुआला
14. माँडांगी
15. गांगा माँडांगी
16. टोबाला माँडांगी
17. रिशु पुआला
18. लोता पुआला
19. विश्वनाथ पुआला
20. लिशी पुआला
21. टुना पुआला
22. सुरेंद्र वाड़ाका (कझुरी)
23. शुकदेब वाड़ाका (कझुरी)
24. बडु वाड़ाका (कझुरी)